सूची



कहानी का जन्म, विकास और उसका क्षेत्र

कहानी का आरम्भ

यह दृश्यमान जगत स्वयं एक कहानी है और सबसे बड़ा कहानीकार है वह आदि पुरुष। उस विधाता की कहानी का कथानक यह संसार अद्भुत, अलौकिक, अनूठा, व्यापक और अकल्पनीय है, इसीलिए इतना रोचक, इतना सरस और इतना मनोरम है कि हम उसकी बात सुनते नहीं थकते, उसकी प्रशंसा करते नहीं अघाते। यह तो हुई उस अलौकिक कहानी की कथा और उस दिव्यशरीरी कहानीकार की बात। हमारी लौकिक कहानी का जन्म भी अत्यन्त प्राचीन काल में हुआ था—उस समय, जब पहले पहल मनुष्य ने विस्मित-सम्भ्रमभाव से इस विस्तृत नीलाकाश के नीचे चारों ओर अपनी दृष्टि फैलाई थी और चकित होकर सृष्टि की विभूतियों का अवलोकन किया था। तब उषा को देखकर उसने पहली कहानी रची थी, और संध्या को देखकर दूसरी। फिर तो चाँद और तारों पर, आकाश और निशीथ पर, अपने पड़ोसी पशु-पक्षियों पर उसने कितनी ही कहानियाँ रचीं। विस्मय और भावुकता, औत्सुक्य और सरलता उन कहानियों का प्राण थी। नीति और आचार, कर्तव्य और धर्म के तत्वों का समावेश कहानियों में तबतक नहीं हुआ जबतक मनुष्य ने जीवन की जटिलता में प्रवेश नहीं किया। अतः कहानी का जन्म औत्सुक्य और विस्मय में एवं उसका विकास जीवन की जटिलता में होता है। वैदिक साहित्य में संवादों के रूप में जिन कथाओं का अवतरण हुआ है उनमें

आदिम कहानियों का सच्चा स्वरूप नहीं है। उस समय तक कथा-साहित्य विकास के पथ पर अग्रसर हो चुका था।

कहानी का विकास

इसी प्रकार सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ कहानियों का स्वरूप भी विकसित होता गया। शनैः शनैः उनमे धर्म, अर्थशास्त्र, समाजनीति, सदाचार आदि की छाया रहने लगी एवं कहानियों का उद्देश्य मानवजीवन की भाँति व्यापक और विस्तृत होता गया। महाभारतकाल और बौद्धकाल की कहानियों मे यह व्यापकता बहुत दूर तक जा पहुँची है। जीवन के अनेक पहलुओं का प्रदर्शन उनमे किया गया है। किन्तु उस-कालीन कहानियों मे एक विशेषता है, कि उनमे मानव और अमानव जीवन के संबंध की एक कौतूहलपूर्ण झाँकी है। कल्पना की कोमलता, और भावो की विशदता के भीतर यह संबंध बराबर चल रहा है। महाभारत और जातको मे ऐसी कितनी ही कहानियाँ संगृहीत हुई हैं। इसके बाद कहानियो का रुख, नीति, धर्म और आचार की ओर विशेष हो गया और फलत, 'पंचतंत्र' की शैली पर उनका निर्माण होने लगा। इन कहानियों मे भी अप्रस्तुत अमानवजीवन के द्वारा प्रस्तुत मानव जीवन की रूप-रेखा उपस्थित की गई है। 'बृहत्कथा' के साथ कहानियों का दृष्टि कोण एक बार और परिवर्तित हुआ और आगे चल कर वह 'कादम्बरी' आदि की विशुद्ध साहित्यिक कथा-शैली मे विकसित हुआ।

हिन्दी कहानी का विकास-क्रम

उस समय वर्तमान प्रान्तीय बोलियाँ अपने अस्तित्व मे आ रही थीं। अत. इन बोलियों को साहित्यिक भाषाओं का रूप

प्राप्त होने तक कहानियों की परंपरा, बहुत करके, मौखिक रही। बाद से कुछ कहानियों की रचना, समय समय पर होती रही, उनमें भाषा की अक्षमता के कारण प्राचीन कहानी की विकास-परंपरा नहीं मिलती है। आधुनिक काल के आरंभिक दिनों में हिन्दी गद्य में चल आया तभी से कहानियों की रचना का युग समझना चाहिए। पर इस समय भारतीय संस्कृति दूसरी संस्कृतियों के संसर्ग में आ चुकी थी और भारतीय-जीवन-स्रोत नवीन दिशा की ओर प्रवाहित होने लगा था, अतः कहानियों की शैली भी अपनी प्राचीन विशेषता से दूर, एक अभिनव ढंग से अपने रूप में आने लगी। इस संधिकाल की आरंभिक रचनाओं में हिन्दू और इस्लामी जीवन के मिश्रित चित्र, अतिरंजित और तूलतवील तथा कहीं कहीं अतिमानवीय घटनाओं के बीच चित्रित हुए हैं। 'सहस्ररजनी चरित्र' और 'किस्सा साढ़े तीनयार' से 'चन्द्रकान्ता संतति' तक यह अवस्था रहने के बाद पाश्चात्य कथाशैली का प्रभाव दिखाई पड़ने लगता है। आजकल की कलामय कहानियाँ पाश्चात्य कथाशैली से ही अनुप्राणित हुई हैं, यद्यपि अब उनमें भारतीय जीवन की विशेषताओं का प्रभाव उत्तरोत्तर वृद्धि पा रहा है।

कहानी में सत्यांश

कुछ लोग कहानियों को कल्पना-प्रसूत होने के कारण मिथ्या समझ लेते हैं। इसीलिए वे कहानियों के पठन-पाठन को उतना महत्व नहीं देते किन्तु यह धारणा भ्रान्त है। कहानी कल्पना-प्रसूत होने पर भी सत्य होती है क्योंकि उसमें जिस व्यापार का कल्पित चित्र खींचा जाता है, उसे हम जीवन में नित्य होते हुए देखते हैं। किसी कल्पित पात्र के साथ नित्य घटने वाली

घटनाएँ जोड़ देने से ही वे मिथ्या होजाती हैं, इसे कौन स्वीकार करेगा? यही क्यों अतिरंजित, अलौकिक, अतिमानवीय और अमानवीय घटना-क्रम के बीच भी जीवन के सत्य का वास्तविक स्वरूप स्वाभाविक ढंग से सदैव वर्तमान रहता है। मनुष्यत्व का वह रूप प्रदर्शित करके वाचकों की सहानुभूति पाना ही कहानीकार का उद्देश्य रहता है। 'यदि कल्पना निराधार होती है, तो हम उसमें तल्लीन क्यों हो जाते हैं, उसकी वास्तविकता पर हमें संदेह क्यों नहीं होता? वास्तव में कल्पना भी तो उसीकी की जाती है जिसका कुछ न कुछ अस्तित्व हो। मनुष्य के चन्द्र-लोक में पहुँचने की कल्पना में, मनुष्य भी सत्य है, चन्द्रलोक भी सत्य है और पहुँचना भी सत्य है।' केवल उनका पारस्परिक संबंध ही मिथ्या है पर जीवन की आदर्श परिपूर्णता प्रदर्शित करने के लिए, और उस आदर्श प्राप्ति के हेतु मनुष्य को प्रोत्साहित करने के लिए, यह मिथ्या संबंध भी आवश्यक हो जाता है। 'अतः कहानी में सत्य की खोज पात्र में नहीं, उसके अन्तर्जीवन में करनी चाहिए। व्यक्ति का स्थान तो गौण रहता है, मनुष्यत्व मुख्य।' 'राधा' के स्थान पर 'कमला' और 'रमेश' के स्थान पर 'महेश' हो जाने से कहानी के सत्य को धक्का नहीं लगता, वह तो उसी प्रकार अक्षुण्ण और अखंड बना रहता है।

कहानी में सदाचार

मनोरंजन तो कहानी का प्रमुख उद्देश्य होता ही है, पर 'कला कला के लिए' के समर्थक सामाजिक आदर्शों को विकृत करके भी अपने कृत्य का समर्थन करते हैं और कहते हैं कि कहानीकार का ध्येय सदाचरण की शिक्षा नहीं उसका उद्देश्य तो केवल कहानी कहना है। दूसरी ओर धर्म का झंडा सदा ऊँचा उठाये फिरनेवाले सदाचार की नकेल के बिना कहानी को एक

कदम आगे बढ़ने नहीं देना चाहते। पर ये दोनों ही विचार व्यावहारिक रूप नहीं पाते। सदाचार और कला के बीच में कहानी का रथ बराबर चला जा रहा है। किसी कहानी में सदाचार के संहार से पाठक को ठेस लगती है और वह क्षुब्ध होता है, क्योंकि वह अपनी मान्यताओं और आदर्शों का मन्दिर गिरते हुए देखता है। उसमें कितनी ही कला क्यों न हो पर वह उसे क्षुब्ध किये बिना नहीं रहेगी। इसी प्रकार कहानी के रस का लोलुप सहृदय पाठक रचयिता के कोरे उपदेश नहीं चाहता। उपदेशों के लिए बहुत से धर्म शास्त्र और धर्मोपदेष्टा उपलब्ध हैं। वह तो जीवन के ऐसे रमणीय और अरमणीय पहलुओं की झाँकी चाहता है जिनसे भावनाओं और कल्पनाओं को पंख पसार कर उड़ने का क्षेत्र मिल सके। उनके अनुसरण और त्याग का विवेक वह अपने लिए रख लेना चाहता है, और कहानीकार को मेरी समझ से इसमें हस्तक्षेप भी नहीं करना चाहिए।

कहानी की सामग्री कहाँ से प्राप्त होती है?

चाहे जान में हो चाहे अनजान में, कहानी की भी एक कहानी होती है। प्रत्येक कहानी में जीवन की झलक, उसकी स्मृति, उसकी व्याख्या किसी न किसी रूप में अवश्य वर्तमान रहती है। जीवन की यह दार्शनिकता कहानी का एक ऐसा तत्व है जो अपनी मार्मिकता से पाठकों की चित्तवृत्ति को अल्पाधिक प्रभावित करके छोड़ जाता है, लेकिन उस स्मृति को पाल-पोसकर कहानी के साँचे में ढालने वाली परिस्थिति स्वयं भी एक कहानी का रूप रखती है, इसे हम बहुत कम सोचते हैं।

पाठकों के लिए प्रत्येक कहानी की कहानी जान लेना असंभव सी बात है, जबकि स्वयं लेखक की शक्ति भी वहाँ तक सोचने

को तैयार नहीं होती। और न होना ही ठीक है, क्योंकि यदि वह कार्यों के कारण के अनुसंधान में व्यस्त होजाय तो कलाकार के उच्च आसन से खिसक जाय। इसीलिए वह जीवन के अनवरत प्रवाह में से मतलब की सामग्री लेकर अपने अभीष्ट पथ की ओर चल पड़ता है। उसके अवतरण का रहस्योदघाटन उसकी कला की सीमा से बाहर है। अत. कथालेखक जो कुछ जानता है उसमें से बहुत कुछ को भुलाकर अपना काम आरम्भ करता है। स्मृतियों को विस्मृति के रँग में डुबोने से जो कुछ बिना रँगा हुआ रह जाता है, उसी को वह कलापूर्ण ढंग से विनियोजित कर देता है। यही कहानी की रोचकता का मुख्य कारण होता है।

कहानी की इन स्मृतियों का संबंध जीवन की अपरिसीम अविराम धारा से तो अविछिन्नरूप से होता ही है, किन्तु आगे चलकर पात्रापात्रता के अनुसार, उसके भेद हो जाते हैं। कहीं तो कहानी की सामग्री वैयक्तिक जीवन से 'गृहीत होती है कहीं जीवन के विश्वव्यापी शरीर से, अर्थात् कोई लेखक व्यक्तिगत जीवन से अपनी कहानियों के कथानक चुनते हैं और कोई अनन्त जीवन की अविराम धारा से। पहली श्रेणी के लेखक स्वानुभव पर अधिक बल देते है, जबकि दूसरी श्रेणी के मनुष्य के चिरकाल से अर्जित ज्ञान का अपेक्षाकृत अधिक उपयोग करते हैं। प्रथम श्रेणीवालो की रचनाओ के संस्मरण प्राय उन्हीं के अथवा उन्ही के निजी संसार से संबंधित रहते हैं, हो सकता है कि जीवन के व्यापक स्वरूप की छाया भी उन पर पड़ी हो और थोडे बहुत अंश मे पडती ही है लेकिन ज्यों-ज्यों लेखक इस व्यापक छाया के नीचे पहुँचकर, जीवन-प्रवाह के अतल मे गोते लगाकर मोती निकालता है, त्यों त्यों उसकी कहानियों के कथानक प्रौढ, व्यापक और क्षमताशाली होते जाते हैं अर्थात्

कहानी-कला व्यक्तिगत जीवन के क्षेत्र मे संकुचित और उसके व्यापक क्षेत्र मे विकसित और क्षमताशालिनी होती है, और अधिक स्पष्ट करें तो कह सकते हैं कि कहानी-लेखक को अपने अनुभव से तो काम लेना ही चाहिए लेकिन विश्व के अनुभव से वह जितना काम लेगा उतना ही वह सफल कहानीकार होगा। क्योंकि मनुष्य जो कुछ जैसा है वह अपनी निजी विशेषताओं के साथ संसार के संपर्क और संसर्ग के मिलन से बना है, जीवन की इसी रूप-रेखा की झलक मे हमारे लिए आकर्षण की सामग्री रहती है। कौन ऐसा वीतराग है जो उसमें संलग्न और संलीन न होगा। मानव की यही अभिव्यक्ति साहित्य का स्रोत है और इसी की जिज्ञासा साहित्यानुराग।

वर्तमान हिन्दी कहानी और उसका भविष्य

कहानी के विकास-क्रम को अंकित करते हुए हम इस विषय मे कह आये हैं कि वर्तमान हिन्दी कहानी पाश्चात्य कथा-साहित्य के अनुकरण पर प्रारम्भ हुई थी, पर शनैः शनैः उसमे मौलिकता की छाप लगकर अब वह अपने स्वतन्त्र अस्तित्व की अधिकारिणी हो रही है। हिन्दी कहानी के जन्मदाता और उन्नायक स्वर्गीय श्रीप्रेमचन्द के जीवन मे ही हमारे कहानी-साहित्य में युगपरिवर्तन होगया है। उन्होंने जिस समय साहित्य क्षेत्र में पदार्पण किया था उस समय की कहानी और आज की कहानी युगान्तर की सूचक है। इस बीच जीवन और समाज की समस्याएँ एवं भावनाएँ कहानियों का विषय बन जाने से आज की कहानियां हमारे लिए पर्याप्त आकर्षण की वस्तु हो गई है। कहानियों के इस प्रखर प्रवाह ने हमारी भाषा पर भी असर डाला है। प्रेमचन्द, कौशिक, सुदर्शन, उग्र, चतुरसेन और जैनेन्द्र की

परम्परा, भाषा और भाव किसी दृष्टि से, सीधी रेखा में नहीं चलती। न यह संभव ही था। इस परम्परा को मिलानेवाली मध्यवर्ती अनेक कड़ियों को जोड़ने पर भी विकासक्रम सीधी रेखा में निर्धारित नहीं हो सकता। उसके लिए व्यक्तिगत विशेषताओं को मानना ही पड़ेगा। एवं उसका श्रेय व्यष्टि और समष्टि के सामञ्जस्य पर ही निर्भर रखना होगा। प्रसिद्ध-प्राप्त लेखकों के नाम भले ही जिह्वा पर बिना प्रयास जल्दी-जल्दी आजायँ, किन्तु वर्तमान का निर्माण सामूहिक प्रयास का ही सुपरिणाम है। इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

छोटे बड़े सबके योग से, कण-कण का संचय करके, संप्रति जिस परिस्थिति का निर्माण हुआ है उस पर दृष्टिपात करने से एक उज्ज्वल भविष्य की झाँकी मिलती है। हमारी कहानी का भावी युग अत्यन्त आशापूर्ण मालूम पड़ता है। उसमें जीवन की विविधता और बहुलता का समावेश करने की ओर हमारे कहानीकारों की प्रवृत्ति जा रही है, यह बहुत अच्छी बात है। तो भी अभी हमारी कहानी में, हमारे अन्तर्जीवन के बहुत से पहलुओं को, लिया जा सकता है और उनके द्वारा उसमें सरसता, रोचकता एवं नूतनता का संचार किया जा सकता है।

बीकानेर
नवयुग ग्रंथ कुटीर

शम्भूदयाल सक्सेना

विधाता का परिहास।

"अभाव को आदमी प्यार करता है," तीर की तरह ये शब्द मेरे कानों में चले गये। घोड़ा तेजी से जारहा था। रोकते-रोकते वह आध फर्लांग तक चला गया।

नीम के पेड से उसे अटकाकर कुटी के दरवाजे पर दुनाली बन्दूक रख दी। भीतर कैसे जाऊं, खड़े होकर सोचने लगा।

मेरे भारी पैरों की आहट और फूली हुई सास की तेजी ने मतलब साध दिया। भीतर से उसी कोमल-गंभीर कंठ ने पूछा—"कौन?"

मैं भीतर बढ गया। मृगछाला पर एक दिव्य मूर्ति महात्मा बैठे थे। पास ही एक लावण्यवती रमणी आसीन थी। इशारा हुआ। मैं बैठ गया। वह स्त्री भी उसी तरह अविचल बैठी रही।

महात्मा ने स्त्री को लक्ष्य करके सहज भाव से कहा—"तुम्हारे पुत्र हैं, पति हैं, योवन है, धन है,राज्य है, भोग-सामग्री है, सुख है, बुद्धि-विलास है, इसी से इनसे जी भरा है। जो नहीं है उसी की इच्छा है—उसी के लिये प्यार है। बस, यह मृग तृष्णा ही संसार है।"

"सत्य है भगवन्, किन्तु यह—" स्त्री कहते-कहते रुक गई।

महात्मा ने मेरी ओर देखकर कहा—"कुछ शिकार हाथ नहीं लगा? हिंसा मन बहलाने का अच्छा साधन नहीं।—कर्तव्य और त्याग से क्या नहीं मिलता, वत्स!"

मैंने कहा—"महाराज!"

हवन-कुण्ड की थोडी सी राख लेकर महात्मा ने मुझे दी, और कहा—"अगर ध्यान रक्खोगे, तो कुछ कमी न रहेगी।"

मैंने बड़े आदर-भाव से दण्डवत् की और बाहर निकल आया। वह स्त्री कौन थी, उसकी इच्छाएँ क्या थीं, यह जानने का कौतूहल मुझे नहीं हुआ, ऐसा नहीं, पर महात्मा के अधिकार पूर्ण इशारे को मुझे मानना पडा।

(२)

मेरे घर मे क्या नहीं था? माता-पिता, नौकर-चाकर, भाई-बहिन, स्त्री-धन, सभी तो थे। आँगन मे छतरी बँधी थी। दाना चुगकर कबूतर उस पर जा बैठते थे। अस्तबल मे कई घोडे थे। कोई दुलकी, कोई कदम, तो कोई सरपट चाल के लिए मशहूर था। पींजडों मे तोता मैना बोलते थे, लाल-मुनियाँ फुदकते थे और बुलबुलें चहकती थीं लेकिन घर पर मेरा जी नहीं लगता था। दुनियाँ की चहल-पहल से जी दूर भागता था। भीड मे पडकर आदमी निर्जनता के लिए छटपटा उठता है। मेरा भी वही हाल था। इसलिए अक्सर बन्दूक उठाता और शिकार को निकल जाता था।

जगल के आसपास गरीबों की छोटी-छोटी झोपडियाँ देखता, जिनके आगे धूल मे सने हुए बच्चे घुटनों के बल रेंगते

होते तो मेरे हृदय से एक गर्म उच्छ्वास आह के साथ निकल जाती थी। तीस की मेरी और तेईस की मेरी स्त्री की उम्र थी, पर अब तक सन्तान का मुख देखने का सौभाग्य न मिला था।

अपने धन-जन-सम्पन्न जीवन को मैं ऐसे गरीब के सरल जीवन से बदल लेने को लालायित था, जिसके छोटे से आँगन मे नीम की छाया-तले एक बालक खेलता हो, बाप के पहुँच जाने पर दोनों हाथ फैलाकर 'बापू-बापू' कह कर आगे झुक पड़ता हो, उसका पिता माथे का पसीना पोंछे बिना ही उसे गोद मे भर लेता हो और प्यार के दो हल्के-मीठे चुम्बन उसके गालों पर जड़ देता हो। बच्चा मुँह को इधर-उधर करके 'बापू-बापू' कहता ही जाता हो।

मेरे जीवन की बस यही लालसा थी। विधाता मुझे धनवान बनाकर मेरे अभिशापों का पात्र बना था। मुझे कंगाल बनाता, पर बच्चेवाला बनाता तो मेरी कल्याण-कामनाएँ उसके आँगन मे वरदानों की वर्षा कर देतीं।

(२)

महात्मा के संकेत से मैंने शिकार छोड़ दिया। उससे मुँह मोड़कर दूसरी तरफ जी लगाया। जिन कबूतरों को नौकर दाना डालते, चुगाते और उड़ाते थे, उन्हे मैं खुद देखने लगा। कभी घस्तबल मे घोड़ों को देखता, तो कभी लाल-मुनियों के पिंजड़ों की सफाई करता। कभी तोता-मैना का मिजाज पूछता। कभी 'राम-राम' की आटे की गोलियां बनाकर मछलियों को खिलाता। कभी चींटियों को चीनी और आटा डालता फिरता। कभी बन्दरों को भुने हुए चने चबाता।

लोग जो मुझे देखते हैरत मे आजाते और आपस मे कहते—"अजीब आदमी है। कभी आठों पहर घोडा और बन्दूक, शिकार और हत्या, कारतूस और गोली और अब कृमि-कीटों से लेकर बड़े बड़े जीवों के कल्याण मे रत। अजब दिमाग है, कभी इधर कभी उधर। घर मे क्या नहीं है, पर यह नहीं होता कि चुपचाप बैठे और मौज करे।"

पर उन्हे क्या मालूम था कि मेरे मन में कैसा हाहाकार हिलोरें ले रहा था !

मैंने किसी व्यंग्य-वक्रोक्ति पर ध्यान न दिया। अपना दुःख भुलाने मे लगा रहा। धीरे-धीरे मन भाव-भक्ति की ओर जाने लगा। मनमे शांति की मात्रा बढने लगी। महात्मा की वाणी भी कुछ समय बाद सफल सी होती देख पडने लगी। एक दिन स्पष्ट संकेत से मेरी श्रीमती ने संशय की बदली मे से जैसे चॉद निकाल दिया। हर्ष से हृदय उत्फुल्ल होगया। गद्‌गद् मन से, उच्छ्वसित अन्तःकरण से, मैं उस दिन देवता के चरणों मे नत होगया। फिर तो पूजा-पाठ और भक्ति-भावना ऐसी बढी कि उसी मे दिन-रात खाता बराबर होने लगा। कभी रामायण, कभी गीता, कभी महाभारत, कभी श्रीमद्‌भागवत्—इन्हीं का स्वाध्याय होने लगा।

(३)

एक दिन आया। मैं बच्चे का बाप हो गया। ओह! कैसा सोने का वह दिन था। रोम-रोम मे हर्ष था। कण-कण मे उल्लास था। मेरा सारा घर उस दिन महोत्सवमय था। बादलों ने मंडप ताना था। इन्द्र धनुष ने वंदनवार बॉधी थी। तारों के दीपक जगे थे। उस दीपमालिका मे मेरा मोहन चन्द्रमा बन

कर उदित हुआ था। धूल के कण मोती बने थे, कंकड़-पत्थर हीरे और नीलम।

बालक का रंग-रूप ?—वह तो सचमुच मेरी कल्पनाओं का शृङ्गार था। कभी मैं गरीब की कुटिया को तरसता था। उस दिन मेरे भाग्य की देवता ईर्ष्या करते थे। तैरते हुए कमल-सी उसकी आँखे, खिले हुए गुलाब-सा मुँह, शिरीष-सा शरीर, किशलय-सी हथेलियाँ किसकी स्पृहा की वस्तु न थी ?

उसे देख-देख कर मैं कल्पना के झरोखे से भविष्य के आँगन मे झाँकता तो एक नया संसार दीखता। कौतूहल, हर्ष, उल्लास, विनोद, माया, ममता, वात्सल्य, सुख, दुःख, विषाद, पीडा सबका छाता-सा तना मालूम पडता, पर उस दुःख में भी सुख और संतोष बरसता था।

बच्चे की इच्छा पूरी होगई। लोग सोचते होंगे, बस होगया। पर नहीं, आदमी तो अभाव को प्यार करता है, भाव को नहीं। बच्चेवाला मेरा प्यार भी आकाश के बादल की तरह पंख पसार कर खुले आकाश को ढँकने लगा। वह एक स्थान से खिसक कर दूसरे पर पहुँच गया, इतने धीरे कि मुझे खबर भी न हुई। अब वह एक शब्द 'बाबू' पर अटका था। वह कौनसा सुनहला-रुपहला दिन होगा, जब तोतले कंठ से अटक-अटक-कर बोले गये उक्त दो अक्षर मेरे कानों मे मिश्री का शर्बत घोलेंगे ?

एक तुच्छ अभिलाषा थी। पर देखता हूँ, बहुत कुछ थी। इतनी कि जितनी मुझे न करनी चाहिए थी। निष्काम की विफलता मे सोच नहीं होता, पर सकाम की विफलता भी अपने बाद एक बिच्छू का डंक छोड जाती है जो बराबर चुभता रहता है।

(६)

मैंने जो चाहा वह न मिला हो, यह भी नहीं। मिला, पर उसका मिलना ही बिच्छू का डंक होगया। महात्मा की कृपा-बेलि भी मेरे दुर्भाग्य के आँगन में फूल-फल न सकी।

(५)

एक बरस के बाद ज्यों-ज्यो महीने बीतने लगे, त्यों-त्यों बालक शब्दों का उच्चारण का प्रयास करने लगा। पहिले 'मॉ-मॉ' से उसने कंठ खोला। मैं अपनी सारी उत्सुकता और अधीरता से 'बाबू' सुनने के लिए व्यग्र होगया।

महीने बीते, पूरा साल बीत गया। तीसरे साल मे उसने पैर रक्खा। 'मॉ-मॉ' से सीधा 'चा-चा' और 'दा-दा' तथा 'आ-जा' और 'का-का' पर पहुँच गया। 'बा-बू' बीच ही मे छूट गया। मैंने कहा—अभी 'आ' की मात्रा चल रही है, 'ऊ' की मात्रा का अभ्यास होने से सब होजायगा—पर कितना विह्वल था मैं।

चौथा साल शुरू हुआ। 'ऊ' की मात्रा चली। 'भालू' 'आलू' इत्यादि का उच्चारण हुआ, पर 'बाबू' अभी तक वह न कह सका। यह नहीं कि प्रयत्न न किया हो। खूब किया। मैं स्वयं उसे गोद मे लेकर 'मॉ-मॉ', काका, चाचा, दादा, बाबा, भालू, आलू,,' कहलाकर जब 'बाबू' कहलाना चाहता तो वह चुप हो जाता। उसकी जबान मे जैसे ताला पड जाता।

पॉचवॉ और फिर छठा साल चला, तो उसे पढने विठा दिया। योग्य से योग्य अध्यापक लगाये। सोचा था कि जबान की खराबी निकल जायगी, तब सब ठीक होजायगा।

(७)

वर्णमाला का पाठ चला। बड़े मजे से और जल्दी ही आशाजनक उन्नति हुई। लिखाई आरम्भ हुई, तो वह भी ठीक चली। यह देखकर मेरा मन पुलकित होगया। मास्टरों की बुद्धि की प्रशंसा करने लगा। किन्तु जब उस अभिलषित शब्द के उच्चारण का अवसर आया, तो वही ढंग। अध्यापक भी चकराने लगे। लिख देने पर भी वही एक शब्द बोलना उसे दुश्वार मालूम पड़ता था। पहले समझा गया, शायद वह शरारत करता है। अच्छी तरह सजा दी गई। उस पर भी कुछ फल न हुआ। अब घरके और लोगों को भी चिन्ता हुई। भरसक प्रयत्न किये गये, पर 'बाबू' शब्द के दोनों अक्षर साथ-साथ उसकी जबान से किसी तरह न निकल सके।

पढ़ता न हो सो बात नहीं। खूब पढ़ता था। तेज भी था। किसी भी किताब को बाँचते समय उसे कष्ट न होता था। पर जहाँ कहीं वह शब्द आया कि बस, सब बन्द। लेकिन जैसे ही जैसे उसकी असमर्थता निश्चित होती जाती थी, वैसे ही वैसे उसके सुनने की लालसा मेरे मन में प्रबलतर हो रही थी, जिससे उसके ऊपर तो आता था क्रोध और अपने अभाग्य पर ढलते थे आँसू।

कैसे कहूँ, वे दिन वे रातें कितने परिताप की थीं।

(८)

साल के साल गुजरते गये। लगातार प्रयत्न निष्फल होते गये। मालूम पड़ता था, उसके मुँह से अगर वे दोनों अक्षर निकल पड़ेंगे तो एक भीषण अभिशाप बनकर मुझे सब तरफ से घेर लेंगे, इसी से विधाता ने उनके ऊपर ताला जड़ दिया है।

अन्त में दुखी, संक्षुब्ध और निराश होकर बारहवे साल मे मैंने उसका पढना-लिखना छुडा दिया।

अब यह बात सब पर जाहिर होगई थी। लोगों ने भी प्रयत्न किये। मेरे कोचवान ने एक घोडे का नाम ही 'बाबू' रख दिया। घरवालों ने 'बाबू' नाम के एक लड़के को कोशिश करके उसका दोस्त बना दिया, पर वह उन दोनों को ही 'यह', 'वह' करके ही बुलाता रहा।

मेरी स्त्री भी रातदिन अपनी अक्ल खर्च करती। वह खुद मुझे बाबू कहकर ही पुकारने लगी। सारे घर ने मेरा असली नाम भुलाकर 'बाबू-बाबू' ही कहना आरंभ किया। किसी के अनुकरण मे आकर उसने अपना व्रत नहीं तोडा। सारे आकाश मे जैसे आकाशकुसुम की प्राप्ति नहीं होती, वैसे ही सबके मुँह के 'बाबू' बाबू' के आकाश से भी उसके मुँह का बाबू रूपी आकाशकुसुम कभी आकर मेरे जीवन मन्दिर के द्वार पर नहीं गिरा। वह सदा सर्वनामों और संकेतो से ही अपना पितृऋण चुकाता रहा।

अठारवें साल के आरम्भ मे उसका यौवन-प्रदीप्त शरीर कुछ अस्वस्थ होगया। अब से पहले वह कभी बीमार न पडा था। सिरदर्द तक न जानता था। उसके अकस्मात् रुग्ण होने के समाचार ने मेरे मनको न जाने कैसा कर दिया।

बड़े-बड़े डाक्टर, ओझे, वैद्य और आगमशास्त्री आचुके थे। मैंने सिर्फ मास्टरों की ही परीक्षा न की थी। सभी की बुद्धि को खोद डाला था। जादू-टोने, मंत्र-तंत्र सब कुछ किये थे। जोगी जतियों को पूछा था। सिन्नी और प्रसाद बाँटे थे, पर कभी मनचाही मुराद न मिली। हाय! अगर एक बार वह गला फाड कर 'बाबू' कह देता।

उसकी बीमारी का समाचार सुनकर हो या और किसी कारण से एक ओझा दौड़ता हुआ आया और बोला—"आश्चर्य नहीं इस बीमारी के बाद आपकी इच्छा पूरी होजाय।"

यह पहला ही अवसर न था, जब लोगों ने इस तरह विश्वास दिलाया हो। वास्तव में जादू-टोना और देवी-देवतों के पीछे मैं बहुत कुछ खर्च कर चुका था। मैंने उसकी बात पर कुछ विशेष ध्यान न दिया। पर फिर भी उससे कह दिया—"अगर तुम्हारा कहना सच निकला तो तुम्हारा घर सोने से भर दूँगा।"

इधर लड़के की हालत दिन-दिन बिगड़ती जारही थी। ऐसा मालूम होता था कि चारपाई तिल-तिल करके उसे खाये जारही है। जो सुबह को था, वह शाम को नहीं, जो रात को था वह दिन को नहीं।

मैं उससे कुछ घृणा-सी करने लगा था, न जाने क्यों? पर उसकी यह दशा देखकर मेरा जी भर आया। वह उत्तरोत्तर दुर्बल और क्षीण होता जाता था उसी तरह मेरा हृदय भी उसकी ओर खिचता जाता था। मेरी स्त्री का हाल ही न पूछो। घर के लोग भी दुखी थे। जिसे दिखाया उसने यही कहा कि अजीब बीमारी है। कोई ठीक-ठीक लक्षण न पहचान सका।

अब उसका शरीर काँटा होगया था। साँस थी, चुपके-चुपके धीरे-धीरे आती जाती थी। नाड़ियों में खून शायद ही बूँदों के परिमाण में कहीं रह गया हो।

सब लोग हार गये थे। पर मैं और उसकी माँ अबतक लगे थे। पिता का पुत्र के लिए जो कर्तव्य हो सकता है उसे मैं

अन्त तक पूरा कर देना चाहता था, उसके बच जानेसे मुझे कुछ मिल जायगा, इस आशा से नहीं, क्योंकि मेरी आशाएं तो बहुत पहले ही समाधिस्थ हो चुकी थीं। एक दिन सवेरे पाँच बजे उसका जी बहुत बिगड़ गया। आशा अन्धकार में छिपने लगी। उसकी माँ गोद मे उसका सिर रखकर बैठी थी। मैं उसके ऊपर झुक-कर देख रहा था कि अभी तक श्वास है क्या)

एकाएक उसने आँखें खोलीं और बिलकुल स्पष्ट शब्दो मे कहा—"बाबू, पानी।" मेरे ऊपर जैसे किसी ने दुनाली बन्दूक दाग दी। मैं अपना आपा भूल गया। असाधारण आवेश मे आकर बेतहाशे अपने दोनों हाथ उसकी छाती पर दे मारे और कहा—"पापी-चाण्डाल!"

पर दूसरे ही क्षण मैंने देखा कि मेरी स्त्री रो पडी और मेरे दोनों हाथ मुर्दे की छाती पर पडे थे।



बुलाक

"तुम्हारी बुलाक बनकर आ गयी। सुराहीदार मोती की झलक—ओह, क्या गजब की!" सवेरे उठकर यह सपना मैं रात की खुमारी के साथ अपनी बीवी के कानों में उँडेल रहा था।

दोनों हँस पड़े। बीवी ने कहा—"वाह! क्या खूब। मैं भी निहाल हो गयी। ऐसी खूबसूरत बुलाक! मेरे होठों को छूने वाला वह मोती! उसे लगाया किसने? कीमत? किस जौहरी की दूकान में पायी थी?

"आगरे में ऐसी चीज मयस्सर कहाँ? लखनऊ के मीना-बाजार में बड़ी परेशानी के बाद मिली थी। उसके मोती का किस्सा सुनो—तुर्कों के हरम से फारस के महलों में, वहाँ से अफगानिस्तान और फिर हिन्दुस्तान! इतना लम्बा सफर करके तब कहीं लखनऊ पहुँचा था वह! वहां मशहूर जौहरी की दूकान पर नीली मखमल पर रक्खा जगमगा रहा था। कीमत दो—'

"दो हजार रुपये?"

"नहीं।"

"तो अशर्फियों'

"जी नहीं—(धीरे से) चुम्बन।'

"दो हजार?"

नहीं।"

"दो सौ ?"

"अजी नहीं—सिर्फ दो।"

"ओहो, इतनी क़ीमत देकर लाये।"

"देकर नहीं, पाने के लिये अपना सब कुछ खोकर लाया।"

"ना जी, इन दामों मुझे पसन्द नहीं—तुम रख लो"—कहकर और खिलखिलाहट में सब कुछ समेटकर लम्बा घूंघट निकालती हुई वह कोठे से निकल गयी।

मेरा बढ़ा हुआ हाथ ओढ़नी के दामन को छूकर रह गया। अकेले जी नहीं लगा। निकाला गिलौरीदान और दो बीड़े चाब लिये।

बीबी हुक्का लेकर आयीं। सामने रखकर बोलीं—ऐं ! ईंट किसने मारी है ?"

"ससुर की बेटीने—" कहकर जैसे बहुत कुछ गुस्सा निकाल डाला।

"लाल होठों पर बुलाक झलकाने के लिये कहो न।"

वह मेरे क़रीब बैठ गयीं। मैंने कहा—"सौदा पट जायगा शायद। चीज़ पसन्द आ गयी है ? कुछ दाम भी तो नहीं हैं। मुफ्त ही है एक तरह से।"

वह आँखें तानकर बोलीं—"रक्खो अपना सौदा। चुप रहो। तुम नहीं जानते।"

इतना डर, इतना खौफ आँधी है ? तूफान है ? बला है ? क्या है ? आओ, थोड़ा और पास आ जाओ बताओ तो सही ।"—मैंने विनती की,

अर्जी मंजूर हुई । पास आकर बैठ गयीं । धीरे से भुनभुनाईं —"गजब हो गया । तुम्हारी भाभी ने सुन लिया ।"

मैंने पूछा—"अब ।"

"अब बुलाक लाकर दिखलाओ, जेठ जी को दिखलायेगी । शायद बहुत दिनों की फरमायश अब पूरी हो जायगी ।"

मैं- "ठीक है । तो दे दो ।"

"फिर वही मजाक ! सच कहती हूँ, तुम ठीक नहीं करते । उन्हें यकीन नहीं होता । कहता हैं मुझसे न छिपाओ, देवर लगते हैं, यह किसी को मालूम नहीं होगा पर दिखा दो । लाख समझाया, मानती ही नहीं ।"

"दे दो न !"

"फिर वही बात । अच्छा, लाओ तो दे दूँ ।"

"पहले दाम चुकाओ ।"

"तुम्हारी परेशान करने की आदत नहीं जाती । दूसरों को फँसाकर आप अलग ! वाह, ऐसा भी क्या ।"

"तो तुम रूठ गयीं ?"

"और नहीं तो क्या ?"—कहकर मुँह फेर लिया ।

मैंने हँसी दबाकर कहा—"अच्छा तुम मान जाओ तो एक तरकीब बताऊँ ।"

"कहो।"

"तुम मेरे कपड़े पहनकर टहलने निकल जाओ, मैं तुम्हारा पार्ट अदाकर दूंगा। इस सफाई के साथ कि बस!—"

"बस—बस रहने भी दो। जिसके पास फालतू वक्त हो, वही तुम्हारे मुंह लगे।"

वह उठकर जाने लगी तो मैंने रोक लिया। आजिजी की, कहा—" बस, क़सम तुम्हारे सिर की। बैठो, जो कहोगी, करूंगा।"

मेरा हाथ झिडककर बोलीं—"ना-ना, मैं न बैठूंगी।"

"किसी तरह नहीं?"

"नहीं।" बड़ी दृढ़ता के साथ कहा।

मैं कुछ नरम पडा। खयाल आया, घर के लोग क्या कहेंगे। इतनी बेशर्मी। दिन निकल आया; मियाँ-बीवी को बातों से अभी फ़ुरसत ही नहीं! मैंने मुलायमियत से विनती की—"मेरी बात पर यकीन करो। अब न चिढ़ाऊंगा। अगर भाभी ने सच ही समझ लिया हो और वह घर में शोहरत करदें, तो राम-राम! तुम नहीं जानती, मुझे कितना, शर्मिंदा होना पड़ेगा। वह भी गुनाह बे लज्जत।"

तरकीब काम कर गयी। बैठ गयीं। मैंने कहा—"पहले तो समझाना—कहना, बात ऐसी न थी। आप समझीं नहीं। अगर न मानें तो कह देना, अभी उन्होंने मुझे दी नहीं है। कुछ काम बाक़ी रह गया था, उसे पूरा कराने को रख ली है।"

"पहले 'न' कहकर फिर 'हो' कहना तो और भी बदजायका होगा। चाहे मानें, चाहे न मानें। 'न' के सिवा और कुछ कही कैसे सकती हूँ।"

"कह तो सकती हो।"

"तमाम घर की आँखों का दर्द बनने के लिए और तुम्हारे हँसने और मजाक उड़ाने के लिए?"

"नहीं, कतई नहीं। अगर जरूरत ही पड़ जाय तो मैं ला भी सकूंगा।"

"क्या?—शायद मसखरी और बदनामी।"

"नहीं जी—बुलाक। क्या समझती हो, मेरे सपने की भी एक वजह थी। मैंने कल ही अपने दोस्त की बीबी को बड़ी नफीस बुलाक पहने देखा था। उसी का ध्यान बना रहा। ख्वाब एकदम ख्वाब ही न था। न होगा, माँग लाऊंगा एक दिन के लिए।"

"तो मुझे यह सब करने की जरूरत?"

"भाभी को संतोष हो जायगा और कहीं तुम्हें भी पसन्द आ गयी तो वैसी ही एक बनवा लाने की कोशिश करूंगा।"

और किसी तरह यह बात तय रही।

(२)

मेरी बीवी कमरे से निकल कर गयीं और उधर भाभी ने आ घेरा। घुल-घुल कर बातें होने लगीं। भाभी ने कहा—"डर या शर्म की क्या बात? लाओ, जरा दिखा दो।"

"नहीं, सो कुछ नहीं।"

"तब बहाने क्यों करती हो?"

"मैं तो सच कहती हूँ, लेकिन--"

"सब ख्वाब की बातें हैं? हा-हा! बड़ी भोली बातें करती हो!"

"नहीं।"

"तो दिखाना हो तो दिखाओ। क्या मैं छीन लूंगी? ऐसा कभी मत सोचना।"

"छिः! यह क्या कहती हो ऐसी जरूरत है तो मैं कह दूंगी, कल आ जायगी।"

"कहाँ से?"

कहीं से भी, पर यह न पूछो।"

"खैर, कुछ भी करो दिखाना तो जरूर-जरूर—देखो, भूल न जाना। नहीं तो--" भाभी ने कहा और भेदपूर्ण हँसी हँसती हुई नजर डाली। सच तो यह कि अभी तक उन्हें यह शक था कि मेरी बीबी बहाने करती है। वह यह बताना नहीं चाहती कि उसका मालिक कहाँ तक उसके शौक को पूरा करता है।

मैं कमरे के अधखुले द [illegible] से सुन रहा था। भाभी की अधीरता पर खूब हँसा और बीबी के संकट से और भी आनन्द लेने लगा। एक मीठी गुदगुदी तमाम बदन में मालूम होने लगी। कुछ डर था, कुछ हँसी थी, कुछ मजाक था, पर सब ऐसे थे, जिनमें से किसी एक का आनन्द नहीं लिया जा सकता था।

मैंने देखा--मेरी बीबी ने चूल्हे से चा की देगची उतारी। तब तक भाभी अपना ऊपर लिखा अनुरोध खतम कर चुकी थीं।

मैं व्यंग्य से बहुत घबड़ाता हूँ। मगर चाची के रोज-रोज के तानों ने कुछ हिम्मत बँधा दी है। मैंने बनावट को दूर करते हुए कहा—"आजकल सरदी बहुत होती है।

ललकार का पूरा जवाब देने के लिए वह ठहर गयीं, कहा—"हाँ, सरदी है कि मौत! हाथ-पाँव चलाये नहीं चलते। दो-एक नौकरों का इंतज़ाम होना चाहिए। मैं तो कुछ कर भी लूं, पर आजकल की ये नाजुक-मिज़ाज—"

मेरे भाग्य से उनकी बात खत्म नहीं हो पायी कि काँच के एक भारी बर्तन के गिरकर टूटने की आवाज़ आयी और वह जल्दी से उधर चली गयीं।

मेरी बीवी मंजन से भरे हुए हाथ के साथ, भाभी चाय के बर्तन के साथ घटना-स्थल पर जा पहुँचीं। खैर इतनी थी कि अचार का वह बर्तन खुद चाची ने ही रक्खा था। रखते वक्त किसी के टोकने पर कहा था—यहाँ से न गिर सकेगा।

अब जब गिर गया तो क्या कहे? बहुओं की लापरवाही ही ऐसी चीज है, जो ऐसे मौकों पर सासों को तरस खाने के लिए मिल जाती है। बस उन्होंने भी चार-छ जली-कटी सुना डाली।

मेरी बीवी हाथ धोकर चुपचाप एक पत्थर के बर्तन में अचार उठा-उठाकर भरने लगी।

(३)

तीसरे पहर से पहले दोस्त के यहाँ पहुँचा। नौकरानी से, जो उनके भाई के बच्चे को खिला रही थी, पूछा— ब्रजबहादुर हैं?

"नहीं, साइकिल लेकर कहीं गये हैं'—उसने बच्चे की ठुड्डी पकड़कर मेरी ओर घुमाते हुए कहा।

मुझे चल देना चाहिये था, पर वहीं बैठ गया। बच्चे का बहाना लेकर डटा रहा। एक घंटे से ऊपर गुजर गया, तब कहीं वह हजरत लौटे। मुझसे बोले—"कहो, ये क्या माजरा है? बेवक्त कैसे?"

"जैसा वक्त, वैसा ही माजरा है।"—मैंने हँसकर कहा।

मुझे पकड़कर वह कमरे में ले गये। कहा—"हाँ तो कहो।"

मैंने कहा—"वह यह. ."

"तूल मत दो जी, दो टूक कहो, मुझे जोर की भूख लगी है।"—उन्होंने कहा।

मैं—"अजी, वह यह—"

इस पर वह भलामानस चिल्ला पड़ा—"फिर वही दीवाचा—जाओ जी, मैं नहीं सुनता। पहले खा आऊँ, फिर फुरसत में आकर सुनूंगा।"

मैं—"अजी बड़े भुक्खड़ हो। लो, एक बात में खत्म करूंगा—जाकर अपनी बीवी की बुलाक तो ला दो, दो घंटे के लिए।"

गजबहादुर उछल पड़ा। बोला—"ओहो, कुछ माजरा है दोस्त! तब तो बैठो, तुम कुछ देर का मसाला लेकर आये हो।"

वह झट चला गया खाना खाने। मैं उसकी बेवकूफी पर चिढ़ रहा था। पच्चीस मिनट में शक्ल दिखायी। लाकर दो बीड़े मेरे मुँह में दिये। हँसकर पूछा—"अब कहो, कैसी बीती?"

मैं—खुदा के बंदे! रहम कर। सब कहूँगा, पर अभी नहीं, फिर कभी।

वह—बहुत जल्दी है?

मैं—और नहीं तो।

वह—तो चलो।

"कहाँ ?"

"दाहने हाथ की तरफ। देखता हूँ यार, यह कम्बख्त बुलाक क्या आयी है, एक बला आ गयी है। सभी औरतें लट्टू हो रही हैं। जब मेरी औरत शादी होकर आयी थी, तब उसे भी इतने लोगों ने न देखा था जितनों ने इस बुलाक को देखा है। हाथों हाथ फिर रही है। मैं डरता हूँ, किसी को देकर भूल न जाऊँ।"

बात सच निकली। जिसके यहाँ वह दिखने गयी थी, वहाँ से एक और तथा उसके घर से उसका पडोसी ले गया था। हम दोनों को तीनों जगह दौड़ना पड़ा। हाथ मे आयी और मैं डिबिया मे बंद करके घर की तरफ भागा।

बीबी को लाकर दी। उन्होंने देखी, पसद की और ले गयी भाभी को दिखाने। भाभी नहाकर छत पर बाल सुखा रही थीं। मेरी बीबी ने जाकर डिबिया उनके हाथ मे रखदी। वह खुश होकर लगीं उसे खोलने। जल्दी मे डिबिया हाथ से सरक गयी। नीचे-नीचे कुएँ की बाढ़ पर तो वह जाकर गिरी और बुलाक गयी एकदम कुएँ के भीतर।

दोनों को मालूम पड़ा, जैसे घर का कोई आदमी कुएँ मे गिर पड़ा हो। दोनों सन्नाटे मे खड़ी रह गयीं। सम्हलने पर मेरी बीबी भागती हुई आयी और बोली—"गजब हो गया, बुलाक—"

मैं—"चाची के हाथ मे पड गयी ?"

"नहीं, कुएं मे !"

"हाँ !"

"हाँ !"

"अरे रे! गजब किया। कैसे डाल दी?"

"किसी तरह पड गयी। अब जाओ, जल्दी किसी को
ओ।"—मेरी रोनी सूरत देखकर वह हँस पडी। मुझे आया
सा। वह और हँसी—फिर हँसी। उनकी जीत थी, मेरी हार।
ज़ निगाह से उनकी हँसी को देखता हुआ मैं वाहर भागा।

बाज़ार से एक आदमी को लाया। दो रस्सियों डालकर उसे
तारा। इनाम देने को कहा था। शाम होने वाली थी।
री बीबी ने कहा—"कल निकलवाना। कहीं अँधेरे मे यही
ादमी छिपा ले जाय तो। जरा-सी चीज़ है।"

मुझे भी बात जँच गई। भाभी ने भी यही राय दी। सवेरे
ाने को कहकर आदमी को लौटा दिया। उसकी भी आध घंटे
ी मेहनत फिज़ूल गयी।

(४)

रात को नींद हराम हो गयी। श्रीमती भी डरती थी, मेरी
चन्ता दूर करने के लिए हँसती और हँसाने की कोशिश करती
ी, पर मै न हँसा। कैसी आफत मे पड गया था। मैं कल
ारत को क्या जवाब दूंगा? कैसे उसे यकीन दिलाऊँगा?

रात-भर जागकर सवेरे उठ बैठा। ख़याल आता था, कहीं
ल्ली की डुबकी मे वह आदमी तो नहीं पा गया। तब तो क्यों
ायेगा

घड़ी उठायी, देखा। अभी उसके आने का वक्त नहीं
आ था, लेकिन यकीन क्यों आने लगा। भाई साहब के कमरे
 गया। उनकी घडी देखी। उनकी भी वही सुस्ती। क्यों आज

घड़ियों की रफ्तार मे काहिली आ गयी ? कुछ समझ में न आया।

तब तक खुश किस्मती से उसने आकर आवाज़ दी—"बाबू साहब !"

"हाँ जी, आ जाओ"—छूटते ही मेरी ज़बान से निकला।

वह आया। कपड़े उतारे। एक बार मुझसे पूछा—"कोई छोटी चीज है या बडी ?"

अभी तक उसे चीज़ का नाम नहीं बताया गया था। मैंने कहा—"न बहुत छोटी, न बडी ? तुम जाकर मिट्टी भरते जाओ। मिलेगी, मिल जायगी, नही तो कुएँ की सफाई ही सही।"

वह घुसा। क़रीब पैंतीस मिनट लगे। मेरी बीबी और भाभी मिट्टी की परीक्षा करती जाती थीं। चाची को पता न चले, इसलिए बारी-बारी से दोनों घर के काम-काज में हाथ बँटा आती थीं। पर चाची क्यों मानने लगीं ? उन्हे इस तरह धोखा देना मुमकिन था क्या ? संदेह होते ही वह दौडी आयीं और बोलीं—"यह क्या हो रहा है ?"

"कुएँ की सफाई"—मैंने कहा।

"क्यों ?"

"यों ही पानी कुछ गदला हो गया था।"

"तुम्हारे ही लिये ? अच्छा है, काम निकालना चाहिए।"

मैंने भाभी की तरफ देखा, अर्थपूर्ण दृष्टि से। मालूम हुआ, उन्होंने कुछ भेद खोला नहीं है। चाची खड़ी थी। मैंने मिट्टी का आखिरी डोल खींचकर डाला। मेरी बीबी अपनी काम से

जा लगी थी। चाची को कुछ धोखा हुआ। झुककर एक उँगली मिट्टी में डाली, और बुलाक उनकी हथेली पर थी। हम सब के सब काठमारे-से खड़े थे। आखिर मैंने कहा—"मिल गयी!"—कहने में आश्चर्य था, खुशी थी और था चाची का भय!

चाची ने शायद अभी पूरी तरह देखी न थी। पानी से धोया तो चिल्ला पड़ीं—"अरे देख तो, बहू! अरे देख तो कामता! यह बुलाक—आज कितने सालों बाद मिली। ताज्जुब है, यहाँ कैसे आई? मैं तो ढूँढते-ढूँढते हार गयी थी।"

मेरे मुँह से निकला—"हूँ!"

भाभी बढ़कर देखने लगीं। उन्होंने तो अच्छी तरह देखा भी न था। दौड़ गयीं, मेरी बीबी को बुला लायीं। वह बोलीं—"नहीं जी, यह तो वही है।"

भाभी ने कुछ नहीं कहा। शायद सोचा हो कि मैंने ही कभी चाची के बक्स से उड़ा दी होगी।

मैंने चाची को असलियत बतायी, पर वह क्यों मानने लगीं। बोलीं—"तो वह दूसरी होगी। यह तो वही है।"

मैंने कहा—"वाह! यह कैसे हो सकता है?"

सारे घर में एक तहलका सा मच गया। कई घंटे तक बाकी मिट्टी का एक-एक रवा तलाशा किया गया, पर बेकार।

(४)

चाची ने चाचा को दिखाया—वह भी पहचान कर बोले—"हाँ, यह तो वही है। पर अगर कामता अपने दोस्त के ... से लाया, तो वहाँ कैसे पहुँची?"

चाची—"यही तो ताज्जुब है ।"

चाचा—"और, तुम जानती हो , मैंने इसे कैसे पाया था ? नवाब वंगश की भतीजी जब गरीबी के दिन बिता रही थी, तो उस पर बगावत का शक किया गया । बेचारी बड़ी आफत मे पडी। मैंने बडी लिखा-पढी के बाद सरकार को इतमीनान दिलाया कि बात बिलकुल गलत है । बेगम साहिबा सरकार की बड़ी खैरख्वाह है। उसी एहसान के बदले एक दिन बेगम साहिबा ने अपना यह आखिरी जेवर मुझे नजर किया था ।"

चाचा ने बुलाक मुझे दी, कहा—"अपने दोस्त को लौटा देना, पर पूछ लेना, उन्होंने कहाँ से खरीदी है ?"

मैंने संतोष की सास ली और कहा—"हॉ, सो पूछ लू गा ।"

बुलाक जैसे तैसे डिबिया मे बंद करके तुरत दोस्त को जाकर दी और कान पकड़ा कि औरतो के फंदे मे कभी न पड़ूंगा ।

दोस्त ने पूछा—"कहो जी, पसन्द आयी ?"

"बहुत । पर यह तो कहो, कहाँ से खरीदी ?"

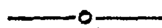
"मेसर्स श्यामलाल बुलाकीदास ज्वेलर्स की दूकान से ।"

दूसरे दिन से चाचा ने पूछताछ शुरू की । जौहरी ने एक बाबू का पता बता दिया । वह कभी बी० बी० सी० आई० मे पार्सल क्लर्क थे । आजकल नौकरी छोड़कर घर बैठे थे । उन्होंने बताया—"मुझे तो यह भेंट मिली थी । एक आढ़तिये से ।" उसका नाम पता लिख दिया ।

आढ़तिया तो मर चुका था , उसके बही खाते से मालूम हुआ, इलाही ने उसके हाथ बेची थी ।

इलाही शहर का मशहूर बदमाश है। उसका तो यही पेशा है, पर इसे वह कैसे पा गया ? पता लगाने से मालूम हुआ, उसने खरीदी नहीं, जुए के अड्डे के मालिक की स्त्री से पायी थी। मुंशी किशनगोपाल जुए में सब कुछ हार जाने पर उसे मकान मालिकन के हाथ बेच आये थे और वह थे हमारी चाची के सगे भाई, पर वह दो महीने पहले फौत हो चुके थे। इसलिए आगे जांच करने की जगह न थी, और जरूरत भी नहीं रह गयी थी।

चाची ने सुना तो बेचारी बहुत रोती रहीं, पर कौन जाने, बुलाक के लिये या भाई के लिए ?



चाची—"यही तो ताज्जुब है !"

चाचा—"और, तुम जानती हो , मैने इसे कैसे पाया था ? नवाब वंगश की भतीजी जब गरीबी के दिन बिता रही थी, तो उस पर बगावत का शक किया गया। बेचारी बड़ी आफत में पडी। मैंने बडी लिखा-पढी के बाद सरकार को इतमीनान दिलाया कि बात बिलकुल गलत है। बेगम साहिबा सरकार की बड़ी खैरख्वाह है। उसी एहसान के बदले एक दिन बेगम साहिबा ने अपना यह आखिरी जेवर मुझे नज़र किया था।"

चाचा ने बुलाक मुझे दी, कहा—"अपने दोस्त को लौटा देना, पर पूछ लेना, उन्होंने कहाँ से ख़रीदी है ?"

मैंने संतोप की सास ली और कहा—"हाँ, सो पूछ लूगा।"

बुलाक जैसे तैसे डिबिया मे बंद करके तुरत दोस्त को जाकर दी और कान पकडा कि औरतो के फंदे मे कभी न पडूंगा।

दोस्त ने पूछा—"कहो जी, पसन्द आयी ?"

"बहुत। पर यह तो कहो, कहाँ से ख़रीदी ?"

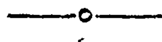
"मेसर्स श्यामलाल बुलाकीदास ज्वेलर्स की दूकान से।"

दूसरे दिन से चाचा ने पूछताछ शुरू की । जौहरी ने एक बाबू का पता बता दिया। वह कभी बी० बी० सी० आई० में पार्सल क्लर्क थे। आजकल नौकरी छोड़कर घर बैठे थे। उन्होंने बताया—"मुझे तो यह भेंट मिली थी । एक आढ़तिये से।" उसका नाम पता लिख दिया।

आढ़तिया तो मर चुका था , उसके वही खाते से मालूम हुआ, इलाही ने उसके हाथ बेची थी।

इलाही शहर का मशहूर बदमाश है। उसका तो यही पेशा है; पर इसे वह कैसे पा गया ? पता लगाने से मालूम हुआ, उसने खरीदी नहीं, जुए के अड्डे के मालिक की स्त्री से पायी थी। मुंशी किशनगोपाल जुए में सब कुछ हार जाने पर उसे मकान मालिकन के हाथ बेच आये थे और वह थे हमारी चाची के सगे भाई, पर वह दो महीने पहले फौत हो चुके थे। इसलिए आगे जांच करने की जगह न थी, और जरूरत भी नहीं रह गयी थी।

चाची ने सुना तो बेचारी बहुत रोती रहीं, पर कौन जाने, बुलाक के लिये या भाई के लिए ?



हृदय पर विजय

(१)

प्रोफेसर प्रेमनाथ के ज़ीने से उतरकर सड़क पर खड़े होते ही पीछे से एक आदमी ने कहा—बाबू साहब, यह रेजगी लीजिये और एक रुपया मुझे दीजिये।

प्रेमनाथ ने उसके चेहरे की ओर ज़रा अकचकाकर ताका, फिर फूलकुमारी, अपनी सब से छोटी लड़की को सहारा देकर ज़ीने से उतार लिया। फूलकुमारी के गाल पर एक प्यार का चुम्बन अंकित करके उन्होंने कहा—रन्नो, फूलबाग चलोगी न?

बच्ची ने जवाब नहीं दिया। सिर्फ सिर हिला दिया।

चलने से पहले प्रेमनाथ ने जेब में हाथ डाला, और एक रुपया निकाल कर बोले लाओ रेजगी।

"लीजिए बाबूजी, पर कुछ पैसे भी दूंगा"—कहकर उस आदमी ने प्रेमनाथ के हाथ पर एक चांदी की चौअन्नी, एक निकिल की दुअन्नी, तीन इकन्नी रख दीं और बाक़ी पैसे अपनी छोटी कपड़े की थैली से निकाल-निकाल कर गिनने लगा।

प्रेमनाथ की स्त्री फूलकुमारी को उतारने के लिए ज़ीने के नीचे तक आयी थी। वह किवाड़ के पीछे खड़ी होकर पति की लीला बड़े कौतुक से देख रही थी।

अभी उस आदमी ने पैसे पूरे भी न कर पाये थे कि एक छः-सात साल की लड़की ने आकर उसका हाथ पकड़ लिया

और रोने स्वर में बोली- नहीं अब्बा, सब पैसे न दो। एक तो मैं लूँगी। ऊँ-ऊँ-ऊँ, एक तो मुझे दो।

पिता ने लड़की को झिड़ककर कहा—हट-हट, दूर हो। अबकी खेप मे तुझे ज़रूर पैसा दूंगा।

लड़की ने न माना, कहा—नहीं, अब्बा । पहले तो मुझे दो—लेकिन उसने पिता का हाथ छोड़ दिया और जरा दूर पर खड़ी हो गई। पिता ने सारी थैली उलटकर बाकी सात आने पैसे गिन दिये और रुपया लेकर बजाने लगा।

लड़की को शायद अब तक आशा थी। जब पिता चलने को हुआ, तो उसकी काली काली आँखें सजल हो गयीं। वह रोने लगी।

प्रेमनाथ ने एक पैसा लेकर उसके हाथ पर रख दिया। पिता ने घूरकर कहा—नहीं बाबूजी, यह न होगा—और लड़की के हाथ से पैसा छीनकर लौटाने लगा।

प्रेमनाथ ने उसके धूल से भरे हुए हाथ को झटककर कहा—ले जाने दो क्यों रुलाते हो लड़की को। वह भी तो मेरी लड़की की ही बराबर है।

इतने में लड़की पैसा मुट्ठी मे दबाकर खुशी-खुशी भाग गयी। प्रेमनाथ ने अपनी उँगली फूलकुमारी को पकड़ायी और धीरे-धीरे चल पड़े। वह आदमी भी उनके साथ-साथ चलता हुआ बोला- बाबूजी, यह ठीक नहीं हुआ। जबरदस्ती तो मैंने आपको पैसे दिये और—

प्रेमनाथ—कैसे आदमी हो जी, क्या मैंने तुम्हें पैसा दिया ? लडकी जैसे तुम्हारी वैसे मेरी—तुम रहते कहाँ हो ? काम क्या करते हो ? तुम्हारा नाम क्या है।

वह प्रश्नों से घबड़ाया नहीं, उनके क्रम का ध्यान रखके इस प्रकार बोला—जुम्मन कहते हैं मुझे, मिट्टी खोद-खोदकर बेचता हूँ फिर मूलगंज की एक संकरी गली की ओर हाथ उठा कर बोला—उधर नुक्कड़ पर एक कोठरी मे रहता हूँ। मिट्टी की जरूरत हो तो आपके यहाँ पहुँचा दूंगा।

प्रेमनाथ—हाँ, कहूँगा—फिर दोनो अलग-अलग रास्तों से चल दिये। लेकिन जुम्मन की आँखों मे जो कृतज्ञता भरी थी; थी, वह प्रेमनाथ से न छिप सकी।

(२)

प्रेमनाथ घूम फिर कर लौटे, तो श्रीमती ने हँसकर पूछा—क्यों जी, तुम्हे भी कितनी फिजूल की बाते आती है। कौन था वह आदमी ? कितनी देर तो दरवाजे के पास ही लगादी थी, फिर कहते हो, फूल तंग कर डालती है।

प्रेमनाथ ने फूल को गोद से उतार कर कहा—सब तरह के आदमी मिलते हैं। आज तो फूल ने सचमुच हैरान कर डाला। कहाँ-कहाँ घुमाया और मजा यह कि गोद से नीचे कदम नहीं दिया। कितने पैसे खराब कराके लौटी है। निकाल फूल। अपने खिलौने, बिस्कुट और चाकलेट। थोड़े कमला को और थोड़े शारदा को और थोड़े राजू भइया को दे।

श्रीमती ने फूलकुमारी को अपनी गोद मे खींच लिया और बोली—बाँटने से पैसे नहीं खर्च होते। हमारी लड़की ने कुछ ले

लिया तो जानों बड़े पैसे खर्च हो गये। देखे बेटी, तुम क्या-क्या ले आयी हो ?

फूलकुमारी उठकर पिता की तरफ भागने लगी, तो माँ ने खींचकर बिठा लिया और ज़रा मुस्करा कर डाँटा—जानती नहीं बाबूजी कितनी जल्दी हैरान-परेशान होजाते हैं। फिर वहीं भाग रही है।

प्रेम-कलह के सामने मिठाई भी फीकी लगती है। बड़ी देर तक प्रेमनाथ बैठे-बैठे गृहस्थ-जीवन का आनन्द लेते रहे। उस दिन बडी लड़की कमला ने भोजन बनाया था। शारदा और कमला दोनों को माँ ने रसोई आदि मे प्रवीण कर रक्खा था। सब लोग उठकर रसोई-गृह मे गये। तब तक काफी देर हो चुकी थी।

भोजन के बाद फूल की माँ ने सुनाया—तुमने तो जुम्मन की लड़की को एक ही पैसा दिया। उसके हाव-भाव और भरी हुई आँखें और उसके पिता की विवशता देखकर मेरे तो जी मे था कि उससे पैसे न लेते, पूरा रुपया ही उसे दे देते।

प्रेमनाथ—औरतों का हृदय कोमल होता ही है, लेकिन लिए तो तुम बड़ी कठोर हो, और कोई समय था जब तुम्हे राज़ी करने में मेरे समय के दुरुपयोग का ठिकाना नहीं था। याद है।

पत्नी—तुम्हारी इच्छा है, भूल जाऊं ?

प्रेमनाथ—तुम तो भूल भी सकती हो, पर मेरे लिए भूलना कठिन हैं मैंने 'अब की तुम' और और 'तब की तुम' मे परिवर्तन देखा है।

पत्नी—और, जैसे मैंने तो कुछ देखा ही नहीं। तुम तो जैसे सदा ऐसे ही हो।

उसके बाद और बहुत-सी बातें हुईं। फूल की माँ ने और मजेदार घटना सुनायी, कहा—आज नीचे सडक पर एक मदारी तमाशा दिखाने लगा। बडी भीड थी। दो एंग्लो-इंडियन युवतियाँ भी कहीं से आ गयीं। एक गुण्डे ने उन्हें छेडा। इस पर बडा गोलमाल हुआ। पुलीस आ गयी। गुण्डे तो नहीं, पीटा गया बेचारा मदारी। तमाशा भी उसका पूरा न हो पाया, पैसा भी नहीं मिला। इस शहर में गुण्डों का बड़ा राज हो रहा है। शायद उन्हें दबानेवाला अब कोई है नहीं।

प्रेमनाथ—यही सब देखा करती हो दिन-भर?

पत्नी—और क्या, सडक के ऊपर मकान का जो उपयोग हो सकता है, उसे जाने नहीं देती हूँ, लेकिन कानपुर शहर में भले मानस सुरक्षित नहीं हैं।

प्रेमनाथ—होगा।

(३)

प्रेमनाथ का सारा घर कमला के व्याह की तैयारी में लगा था। घर से कई स्त्रियाँ आ पहुँची थीं। उनका असली घर गाँव में था, पर वह शहर से ही व्याह करना चाहते थे। बारात इलाहाबाद से आने वाली है। पंद्रह दिन से अधिक समय नहीं। अब उन्हें कालेज से छुट्टी ले लेनी थी। आज वे छुट्टी लेने ही गये थे।

कालेज बन्द होगया, लेकिन वे बड़ी देर तक प्रिंसिपल से

चपरासी ने कहा—सरकार, चुपचाप चलकर वैठिए, नहीं तो हम सवकी जान जायगी। इधर आकर देखिये, कितनी आग जल रही है। मालूम पडता है मकान जलाये जा रहे है।

प्रेमनाथ ने देखा, कितने ही मुहल्लों से आग उठकर आकाश को छू रही थी। उन्हे मालूम पड़ा, जैसे उनका घर भी जल रहा हो। जी हुआ, किवाड खोल कर निकल भागें, फिर जो हो सो होता रहे।

इसी समय वाहर किसी के भागने की आवाज सुनायी दी। यह भी मालूम हुआ, कोई वरंडे मे आकर ज़ोर-ज़ोर से सांस ले रहा है। प्रेमनाथ का शरीर विकंपित हो गया। चपरासी के चेहरे का रंग उड़ गया। उसने इशारा किया, चुप रहिए सरकार। इसके वाद किसी के गिरने और कराहने की आवाज सुनायी दी—हाय राम, क्या होगा।

प्रेमनाथ उठकर दरवाजे की तरफ दौड़े। चपरासियों ने रोकना चाहा, पर उन्होंने न माना, दरवाज़ा खोल दिया। एक रक्त से लथपथ शरीर को उठा लाये। उसकी सुश्रूषा करने लगे। चपरासियों ने भी योग दिया। आगंतुक ने होश मे आकर वताया—आज कानपुर मे मुर्दों से ढेर लग गये हैं। स्त्री-वच्चों के ऊपर तो ऐसा आमनुपिक अत्याचार कभी सुनने मे नहीं आया। मनुष्यता मर चुकी है। देवत्व का विनाश हो गया है। राक्षसी कृत्यों से कानपुर का वायुमंडल कलुपित हो रहा है। सूर्य की किरणों ने जिन्हें नहीं देखा था, वे सुकुमारियाँ फूलों की तरह मसली जा रही हैं। मैंने वहुत कुछ अपनी आँखों देखा है मकानों को जलते हुए, मन्दिर-मस्जिदों को गिरते हुए।

प्रेमनाथ ने क्रोधावेश से हाथ पटककर कहा—और अधिकारी मर गये क्या ?

आगंतुक ने उसी तरह कहा—अधिकारी राजनीतिक जागृति को कुचलने में तत्परता दिखाते हैं, अन्यत्र शक्ति का अपव्यय करना वे ठीक नहीं समझते।

(४)

दूसरे दिन और दूसरी रात को भी प्रेमनाथ को वहीं रहना पड़ा। घर पहुँचने का कोई प्रयत्न न हो सका। इस बीच में और भी कितने ही भागे हुए लोगों ने वहाँ शरण ली। सबके मुख से यही मालूम हुआ कि नगर में अराजकता का साम्राज्य है। जो क़ानून की रक्षा का भरोसा किये बैठे रहते हैं, वे सामर्थ्य रखते हुए भी गुंडों के शिकार हो जाते हैं।

तीसरे दिन बडे प्रयत्न के बाद स्वयंसेवकों की एक गाड़ी पर चढ़कर प्रेमनाथ घर को रवाना हुए। उस समय उनके मन की दशा कैसी होगी, इसे बताने का प्रयत्न करके हम पाठकों की अबोध विचारधारा को परिमित नहीं करना चाहते। जले हुए मकानों के खँडहर, दीवारों पर पडे रक्त के छींटे, लुटी हुई दूकानों के सामान, मन्दिरों के भग्न शिखर और उन सबके अन्तराल से सिसकती हुई अकाल-मृत्यु-प्राप्त आत्माओं का करुण क्रंदन उनके वक्षःस्थल को विदीर्ण किये देता था। रक्त का प्रवाह उनके शरीर में रुका-सा जा रहा था।

वह जब मकान के सामने पहुँचकर गाड़ी से उतर पडे, तो चारों ओर का संसार रात्रि की-सी शून्य निस्तब्धता में सोया हुआ था। कहीं से कोई आवाज़ नहीं आती थी। उनके ज़ीने का किवाड रोज़ की तरह खुला पड़ा था। प्रेमनाथ का दिल धडक उठा। दो स्वयंसेवकों को खड़ा करके वह ऊपर चढ़े, तो टाँगें काँपती थीं। उन्हे विश्वास नहीं था कि घर में अब कोई देखने को मिलेगा। ऐसा मालूम पड़ता था कि ज़ीने की प्रत्येक सीढी पर

अनेक गुंडे चढ़-उतर चुके हैं। हथियारों और वल्लमों से दीवारें जगह-जगह खुरच गयी थीं।

वह किसी तरह हृदय को दवाये ऊपर पहुँचे, तो देखा अलमारियाँ टूटी पड़ी हैं, परदे जला दिये गये हैं, काँच का सामान बुरी तरह कुचला गया है। घर मे किसी के कराहने तक की आवाज़ नहीं आती है। उन्हें मालूम पडा, जैसे सर्वनाश हो गया। सिर घूम गया, वह धड़ाम से ज़मीन पर गिर पडे। माथे मे काँच चुभ गया, खून का फुहारा छूट पड़ा। नीचे से स्वयंसेवक दौड आये और भीतर से जुम्मन, कमला की माँ, कमला और घर की स्त्रियाँ-वच्चे दौड़ आये। प्रेमनाथ अचेत हो गये थे। कमला की माँ, ने उनका सिर अपनी गोद मे रख लिया, जुम्मन बैठकर हवा करने लगा। स्वयंसेवकों ने पानी के छींटे दिये।

होश मे आने पर भी प्रोफेसर साहव को यही विश्वास हुआ कि वह कानपुर के एक किराये के मकान की छत पर नहीं, वल्कि स्वर्ग मे हैं। जी मे आता था, स्त्री से, वच्चों से और सवसे पूछें कि वे किस तरह की पीड़ा से अंत समय व्यथित हुए थे? लेकिन यत्न करने पर भी उनके सूखे कंठ से वोल नहीं फूटता था।

जुम्मन को पहचानने की भी वह कोशिश करते थे, पर स्मृति काम न देती थी।

(५)

पृथ्वी पर रहकर वहुत समय तक स्वर्ग का आनंद नहीं उठाया जा सकता। प्रेमनाथ को भी सव कुछ मालूम हो गया। उनकी गृहिणी ने उन्हे वताया—तुम्हारे गिरने की आवाज सुनकर हम लोग डर गये थे। भय हुआ था कि गुण्डों ने फिर हमला किया है। हम सभी तीन दिन तक जुम्मन की कोठरी मे छिपकर

तुम्हारे आने से जरा पहले ही घर पहुँचे थे। घर की टूटीफूटी चीजों मे अभी हाथ नहीं लगाया था। तुम्हारी चिंता मे सब लोग चुपचाप बैठे थे। कुछ सूझ नहीं पडता था किससे कहाँ पता लगाया जाय। इतने ही मे ..प्रेमनाथ ने रोककर पूछा—जुम्मन तुम्हें कैसे मिल गया था।

गृहिणी—यह सब अभी बताने की बातें नहीं हैं। हम सब तीन दिन तक मुसलमान के यहा रहकर लौटे हैं। सब बच्चे जुम्मन की रोटियाँ खा चुके हैं। उन्हे घर मे रखना हो तो किसी वेदपाठी आर्य समाजी को बुलाइए।

प्रेमनाथ ने हँसकर और जुम्मन की तरफ देखकर कहा—युगविपर्यय के साथ कर्म-काड मे भी शिथिलता आती जाती है। अब नियमों की पहले-जैसी कड़ाई नहीं रह गयी। अग्निपरीक्षा का नियम राम और त्रेतायुग के साथ चला गया। कलियुग मे वैसा कोई विधान नहीं है तुम घबड़ाओ नहीं, घर मे देखो कुछ बचा भी है या सब लुट गया ?

जुम्मन प्रेमनाथ की बातें नहीं समझ सका। उसने दस रुपये का एक नोट कमला की माँ के पैरों के पास रखकर कहा—चिंता क्या है बहन तुम इससे अभी काम चलाने के लिये चीजें मॅगा लो।

प्रेमनाथ ने गद्‌गद होकर कहा—नही जुम्मन! तुम्हारे अहसानों का भार मेरे कंधे वैसे ही नहीं सॅभाल रहे हैं। उन पर और बोझा लादने की निर्दयता न करो।

जुम्मन ने मानों उन्हीं के शब्दों मे उत्तर दिया—मैं आपको नहीं, बच्चों को दे रहा हूँ। वे भी तो मेरे ही बच्चे है।

प्रेमनाथ ने सिर नीचा कर लिया। प्रियंवदा, उनकी स्त्री. हॅसकर नोट उठाकर चली गयी।



नाव के पापी

जो जितना ही बड़ा है, उसकी गलती भी वैसी ही पृथुल-कलेवरा होती है। जो कई महामारियों की उचौनी से बच चुके होंगे, उन्हें ख़याल होगा कि एक बार चतुरानन बाबा ने फागुन में सावन मनाया था। क्या कहें, वर्षा—वह ज़ोर की वर्षा! एक-दो दिन नहीं, लगातार कई दिनों तक होती रही थी। इधर-उधर जिधर देखो, चारों तरफ़ पानी ही पानी—बस पानी ही पानी! समुद्र ने पृथ्वी के ऊपर आक्रमण किया था। उसी की तरंग-सेना सब जगह फैल गयी थी। स्थल भय से दुबक गया था बीच-बीच में घर-वृक्ष, पतन के कगारों की तरह पराजय की पताका उड़ा रहे थे।

उन्हीं दिनों दूर देश से कुमुक की तरह अपनी पटरियों को खोजती हुई एक एक्सप्रेस आ पहुँची। पहाड़ी की ऊँचाई पर स्टेशन था। गाड़ी जब सही-सलामत वहा जा खड़ी हुई, तो लोगों को प्रतीत हुआ—"अभी दम है। इन्द्र और वरुण की सम्मिलित वाहिनी ही प्रलय नहीं है।"

भागी हुई उस एक्सप्रेस की महिमा के सामने सब नत थे। सब देख रहे थे—कब सीटी देकर गाड़ी भकभक करती हुई सामनेवाले पुल पर से पार हो! पर पुल के नीचे कैसा भीषण प्रवाह है!

गाडी ने सीटी दी, दी—फिर दी, पर सिगनल नदारद। दूसरे ही क्षण पृथ्वी पर प्रलयंकर घन गर्जन के बीच विशाल सुदृढ़ पुल उस प्रचंड प्रवाह में अररररधम्!

Hanumanchand

अब, अब क्या ! जो आशाएँ बच रही थीं—जो गर्व दिन की तरह फूला था, वह मृत्यु की तरह ठंडा पड़ गया। निराशा बादल बनकर छा रही। शोक वृष्टि बन कर प्रलय ढाने लगा। अब कोई उपाय नहीं। गरीबों के गर्व की दुनिया अब उजड़कर रहेगी।

किंतु नहीं, आदमी क्यों मानता है ! गरुड़-पंख से पाल उड़ाती हुई एक नाव बढ़ी। कट-कटकर गिर रहे किनारे पर उसके आ लगते ही एक, दो, दस, पन्द्रह व्यक्ति सवार हो गये 'बस, और नहीं—कहकर और 'हरहर गंगे' बोलकर मल्लाहों ने लंगर उठा दिया। नाव कभी ऊपर कभी नीचे होती हुई चल पड़ी।

थी तो नाव, पर उसका गौरव वायुयान से भी भारी था। लोग किनारे खड़े थे। आँखों के साथ उनके हृदय भी नाव के साथ बहे जा रहे थे। ऐसा लगता था जैसे सबके सुख का संसार उसमें विदा हो रहा है। इसे-उसे जिसे-तिसे न देखकर सब उसी को देख रहे थे।

छाछ के मक्खन की तरह गिने हुए उन आदमियों में सभी सभ्रांत थे। पहले उन्हीं का उतरना जरूरी भी था। नाव हल्की रहे, इसका विशेष ध्यान रक्खा गया था, न होता तो और भी भर लिये जाते, इतने कि यह संख्या तीन से गुणा की जा सकती। यों तो लक्ष्मी पुत्रों की महिमा इनसे भी कई गुना होती है।

जो अपनी दीनता के कारण मन मसोसकर खड़े थे, जानते थे, अभी उनके लिए देर है। वे चुपचाप तट पर खड़े रहे इसी से नाव के आते और जाते किसी वक्त उनके मन में य असंगत आशा नहीं हुई थी कि उन्हें पहला मौका मिलेगा

हाँ, अगर मौत का मुँह होता तो उनके नेता बनाये जाने मे सन्देह न होता। यही होता भी है। विशूचिका या प्लेग आया कि पटापट पहले इन्हीं की बारी आती है।

आफत के समय का अवलंब उस नाव पर इनके लिए जगह न थी। लहरों के पालने मे भूलती हुई वह सबकी आँखों से ओझल हो गयी।

(२)

'नदी हो गयी है कि समुद्र।"

'हाँ जी, पानी ही पानी है'—तालुकेदार साहब की बात का महन्तजीने उत्तर दिया।

एक और बोले—'अजी' बरसात ने भी प्रलय मचा रक्खा है।'

दूसरे ने अपने काश्मीरी शाल को ठीक करते हुए कहा—'मजा ही है, नहीं तो कौन इस नाव का मेहमान होता।'

'ठीक कहा जी'—ताल्लुकेदार साहब ने खुश होकर दाद दी।—'हमीं से कोई कहता कि अपना फर्स्टक्लास सैलून छोड़कर इस नाव पर चलो, तो देखोगे—यह ठीक कुबेर के खजाने पर लगती है। मैं उसके मुँह पर तमाचा जमाता, और कुबेर के खजाने पर एक ठोकर। लेकिन भई, वक्त की बलिहारी है। इस वक्त यही गनीमत है।'

'दुरुस्त है'—एक मुस्लिम महाशय ने कहा।

पास एक दूसरे मौलाना तशरीफ रख रहे थे। उमर ढल चुकी थी, पर ठाट नया था। जर्क-वर्क थे। खिज़ाब से काले

किये हुए वालों पर हाथ फेर रहे थे। वडे तपाक से बोले—'खुदाताला यों तो वडा परवरदिगार है, पर कभी-कभी हुकूमत का कोडा अपने वन्दों पर भी चला वैठता है।'

'यानी हम लोगों पर ?'—एक नये भलेमानस ने पूछा।

जवाव मिला—'जनाव ! वरना क्या जरुरत थी इन आलीशान अश्खास को इस तरह सफर करने की। और अव तक कहाँ के कहाँ पहुँचते ? घर मे वीवी-वच्चे परेशान होंगे। अगर टूटना ही था, पुल वाद मे टूटता। एक गाडी और निकल जाने देता, तो उसकी खुदाई में क्या वट्टा लग जाता ?'

'और क्या यही गनीमत नहीं कि उसने हमे वचा दिया ? नहीं तो गाड़ी पुल पर होती और वह टूटता।'—पूछा गया।

माना कि ऐसा हो भी सकता था। पर क्या इतने लोगों मे ऐसा एक भी हक-परस्त न होता जो दरिया के जोश को जरा देर के लिए रोक देता ? पुल के खम्भों को मजवूत रखता।'—जवाव मिला।

'अच्छा, खैर'—उसने फिर कहा—'पर ऐसे-ऐसे इतने लोगों की एक साथ जान-पहचान का मौका जो दिया ?

'हाँ, यह मानता हूँ। यही एक वात है, वरना यह पूरा जुल्म होता।'

नाव प्रवाह मे पत्ती की तरह उड़ी जा रही थी। उधर किनारे पर खडे लोगों की लोलुप आँखें नाव के जाकर वापस आने की तरफ लगी थीं। लोग थोडे-थोडे इकट्ठे होकर जहाँ-तहाँ वातें कर रहे थे।

एक गरीवों के समुदाय में दु:ख-सुख की वातें हो रही थीं। उनमें से हर एक जानता था, नाव मे चढ़कर पार होने से पहले

कई वार उनके जीवन-मृत्यु का अवसर उपस्थित हो जायगा। एक कह रहा था—'हम लोग पार न भी हो सकें, तो हर्ज नहीं। आये पानी का एक रेला और पहाड़ी का यह खण्ड नदी मे जा पडे; पर ये छोटे-छोटे बच्चे, ये कोमलांगी स्त्रियाँ तो घर पहुँच जायँ। हमारे न रहने से वन जायगी, पर इनके न रहने से घर मसान हो जायगा— भविष्य सूना हो जायगा।'

दूसरा बोला—'कुछ भी हो, अगर ईश्वर ने ही दया न की तो हम और किसी की दया का एक कण भी नहीं पा सकते अगर पहले-दूसरे दर्जे के मुसाफिर होते, तो लोग हमारी परवा करते। भई ग़रीबी पाप है',

एक दूसरा आदमी. जिसके तमाम कपडे पानी मे तर हो रहे थे, बोला—'आदमी तो क्या, ईश्वर भी हम गरीबो पर दया न करेगा। तुमने ठीक कहा जी, ग़रीबी पाप है—'

उसकी बात ख़त्म भी न हुई थी कि एक साथ कई लोग बोल उठे—'ऐसा न कहो जी। दुनिया भूल जाय, पर ईश्वर गरीबों को कभी नहीं भूल सकता। वह तो दीनबन्धु है।'

'दीनबन्धु ?—तो इस समय वह कहाँ है ? ये बच्चे भूखों मुरझा रहे हैं, ये औरतें भय से सूख गयी है, हम लोग पानी और सरदी से काँप रहे हैं और चारों तरफ पानी है। आग नहीं अंगारा नहीं, खाना नहीं, कपडा नहीं, भला, हम-सा दुःखी दीन कौन है ?—और कोई घर से परदेश को निकला था। उसकी मौत की ख़बर भी घर न पहुँच सकेगी। कोई घर पहुँचकर अपने वृद्ध मा-बाप के हाथ की लकडी बनता, उसकी जगह कौन जायगा ? कोई जाकर किसी घर मे दीपक की तरह आलोक फैलाते, वे घर अब अँधेरे में उसासें लेते रहेंगे।—अगर आज

इतने मे एक झोंके के साथ नाव एक विशाल भँवर मे पड़कर चक्कर काटने लगी। मल्लाह लोग चिल्लाये—'नाव चली, आइए—दौड़िए—नहीं तो सब डूबे।'

नाव मे चिल्लाहट मच गयी। लोग अपनी बहादुरी और दिलेरी का दम रखते थे, वे निरीहों की तरह हाथ पटकने लगे मल्लाहों को दौडकर सहायता देने का साहस कोई भी सचित न कर सका, कायरता का अभिनय करते हुए वे सब उठना चाह-चाहकर फिर-फिर गिर पड़ने लगे।

इधर मल्लाहों ने जी होमकर नाव को खींचा और बहुत दूर तक बचा ले गये। इसी समय ऊपर गड़बड़ सुनकर नाव के नीचे से एक आदमी ऊपर की तरफ लपका।

मल्लाहों ने चिल्लाकर पूछा—'कौन, अरे तुम कौन ?' उत्तर मिला—'मुसाफिर।'—और वह आकर मल्लाहों को मदद देने लगा।

जा श्रीमान् लोग भयाकुल हो गये थे, वे कुछ सम्हले। उन्हें ख़याल पड़ा—'हॉ, अरे यह आदमी भी तो साथ ही नाव पर चढ़ा था, तुरंत ही गायब हो गया था। शायद डर से छिप गया था।'

मल्लाहों को ताकीद करके कहा—'हॉ' इससे काम लो। अब तो कुछ डर नहीं है।'

एक वार जी मे आने लगा—'यह क्यों चढा ? हम लोगों के साथ वैठने की इस खूसट की हिम्मत! उतारो, भगाओ, पर तुरन्त खयाल आया—'मौत के मुँह मे है। तव तो अच्छा ही है, लगा रहने दो—कुछ मदद ही करेगा।'

मल्लाह—'बहुत डर है—नहीं, खतरा है। नाव धीरे-धीरे फिर भँवर में जा रही है। अब सब लोग डूबने को तैयार हो जाइए। इस बार बचेगी नहीं।— न-जाने कौन पापी नाव मे चढ आया है।'

मल्लाहों की आखिरी बात मबके कानों मे गूँजकर हृदय में पहुँच गयी। डर से जिनके कायर शरीर कॉप रहे थे, वे सब एक साथ कह उठे—'ज़रूर-ज़रूर कोई पापी नाव मे चढ़ आया है।'

इतने मे बूढे पर जवान बने हुए मौलाना साहब बोले—'अजी' यही नालायक तो है। इसे नाव मे किसने चढ़ाया था ? यह पूरी नाव को डुबो देगा। हटाओ—गिराओ इसे।'

फिर क्या था, एक साथ सब चिल्ला उठे—'यही पापी है, यही पापी है ?' और, जब तक मल्लाह रोकें-रोकें, तब तक सबने भीम वेग से उस बेचारे गरीब आदमी को नाव के नीचे फेंक दिया, घर पर उसका अकेला लड़का मृत्यु-शैय्या पर पड़ा पिता के लिए तडप रहा था। ऐसा मालूम पडा, जैसे सबने मौत से कुश्ती लड ली हो और उसे पछाड़ दिया हो।

इतना पुरुषार्थ करके सब बैठ गये, पर नाव भँवर से बाहर निकलने के बदले पूरी तरह उसमे जा पडी।

मल्लाहों ने कुपित और क्षुब्ध होकर डॉटा—अरे हत्यारो! पापियो! बचो अब मौत के मुँह से। अपने आप मौत बुला ली है, तो जाओ, डूबो। यह भँवर ही तुम्हारे लिए ठीक जगह है।'

यह सुनकर सबके होश उड गये। नाव वेग से भँवर में

नाच रही थी। सब मल्लाहों के पैरों पर गिरने को दौड़े, तब तक मल्लाह नदी मे कूद चुके थे।

धीरे-धीरे, खूब धीरे-धीरे, उनकी आत्माओं को मरने से पहले हज़ार बार अधमरी करके नाव डूब गयी। उनका क्रदन और करुण विलाप तक लहरों के हाहाकार ने किसी को सुनने न दिया।

पर हाय! सब मरते मर गये लेकिन किसी को कहने की हिम्मत न आयी कि नाव मे अब कौन पापी है? अगर कोई गरीब होता, तो ये नर-पिशाच उसे खा जाते। जैसे गरीब ही पाप करते हैं, अमीर तो दूध के धुले देवता होते हैं और पुण्य-ही-पुण्य कमाते हैं।



गरीबों को अपने मन में इच्छाओं को जन्म नहीं देना चाहिए। अन्यथा वह भूल पर भूलें क्यों करता। जिस देश मे शूद्रों के लिए प्राचीन काल से शिक्षा-दीक्षा का विधान नहीं था जहाँ आज भी शायद इसी विचार से शिक्षा सोने के टुकड़ों के मोल विकती है। वहाँ वह अपने बच्चे को बाबू बनाने की हिमाकत क्यों करता ? घरबार फूँक कर तमाशा क्यों देखता ? पर सुनते हैं ग़रीबों के भी हृदय होता है, वैसा ही प्रेममय, वैसा ही ममत्वमय एवं वैसा ही अरमानो से भरा हुआ जैसा श्रीमानों का।

उन अध्यापक महोदय की सूक्ष्मदर्शिता को बारबार प्रणाम है जिन्होंने भिक्खू की बातों पर ध्यान न देकर बच्चे के भविष्य पर ही ध्यान देना ठीक समझा। यदि वे ज़रा विचार से काम लेने का कष्ट स्वीकार न करते, तो पूनी अपने असंगत नाम से साहित्य के गले पर छुरी फेरे विना न रहता।

अध्यापक का विचार सच हुआ। भिक्खू का घर वरवाद हो गया। दोनों जोड़ी बैल राधेलाल के यहाँ पहुँच गये, खेत ज़मींदार ने वेदख़ल करा लिए। घर का लट्ट पट्ट अन्य लेनदारों के हवाले होगया। किसान की आडम्बरहीन सीधी सादी गृहस्थी रात का स्वप्न हो गई। एक खाता-पीता परिवार दर-दर का भिखारी हो गया, शिक्षा के आकाशकुसुम की प्राप्ति मे।

इस तरह घर को मिट्टी मे मिला कर पूनी ने मिडिल पास कर लिया। मास्टर और परीक्षा दोनों ही ने उसकी योग्यता का डंका पीटा पर फल कुछ भी न निकला। उसकी फर्स्ट डिवीजन को उसके माँ-बाप खा पहन न सके। उसकी विशेष योग्यता ने उनके तन ढकने को वस्त्र प्रस्तुत न कर पाये। हाँ, एक बात अवश्य हो गई। उसकी बाबूगीरी की धाक ने उसकी छोटी उम्र मे ही एक

सुन्दरसी हँस-मुख सुशीला चिर-संगिनी से उसके जीवन का विकास-सूत्र ग्रसित करा दिया। अपढ़ किन्तु भावुक, गँवार किन्तु सहृदय पिता ने एक बार फिर जी खोलकर अपने बच्चे की भाग्य-रेखाओं को उज्जवल करने की चेष्टा की। सोचा, मिडिल परीक्षा एक मादक सौंदर्य है। वह नौकरी रूपी सुन्दरी को एक ही कटाक्ष में खींच लायेगा। बाद मे मालूम हुआ प्रकृति सुन्दरी से इस नौकरी-सुन्दरी का मूल्य आजकल सोने के सिक्के से भी अधिक होगया है। किसान का बालक अपनी अकृत्रिम योग्यता से उसके उडान का पीछा नहीं कर सकता।

(२)

वसन्त आता है, कटीली डाले पुष्पित और पल्लवित होजाती हैं। पावस के पैर रखते ही शुष्कपीत भूमि श्यामल शस्य से आच्छादित हो जाती है। प्रकृति के प्राङ्गण में क्रम-क्रम से सभी को अपनी अपनी बहार दिखाने का अवसर मिलता है, लेकिन पूनी की विद्वत्ता कई वसन्त देख कर भी पुष्पित और पल्लवित न हो सकी। जिस विधाता ने उसकी बुद्धि को कुशाग्र बनाने में जरा भी कृपणता नहीं की थी, उसने उसकी योग्यता को मिट्टी-मोल करने मे भी जैसे उसी अहलदिली से काम लिया।

सुनते हैं वधिक रत्नाकर ने उलटा-सीधा नाम जपकर उद्देश सिद्ध कर लिया था। उन के ऋषिवर बाल्मीक बन जाने से उनके अन्दर किसी कमी की कल्पना भी नहीं की जा सकती, किन्तु पूनी का सारा परिवार रात दिन नौकरी का अखण्ड जप करके भी उसे अपने अनुकूल न कर सका। अपनी गृहदशा न सुधार पाया।

उसकी वधू गौरा ने सुहाग-सिन्दूर के साथ घर में प्रवेश किया। गृहलक्ष्मी आई पर लक्ष्मी ने कभी कृपा नहीं की। हाथ

को तंगी हृदय की शालीनता को भी तंग कर देती है। उदारमना भावुक भिक्खू अब पूर्व जैसा नहीं रहा है। उसने बड़ी खुशी से अपना सर्वस्व पूनी के आनन्द विलास मे होम दिया था। एक क्षण के लिए भी उसे बुढापे की विपन्न दशा मे चिंतित नहीं कर पाया था। आज उसकी वह हालत नहीं है। पूनी के निठल्ले पन पर उसे खीजना पड़ता है। बहू के खर्चीलेपन पर उसे रीस होती है। पैसा उसके लिए मुहर हो गया है।

एकाएक एक दिन पूनी की नौकरी का पैगाम आगया। घर आनन्द छा गया। भिक्खू ने उस दिन मुक्त हस्त होकर बहुत कुछ खर्च कर डाला। बहू के लिए रंगीन चूनरी, किनारीदार चोली और बेटे के लिए कालरदार कमीज वह झटपट बाजार से खरीद लाया। बैशाख से एक के कितने गुने देने पडेंगे यह विचार कर उसने अपने सिर को दुखाना व्यर्थ समझा।

पूनी घर से जाने लगा, तो माँ रो पड़ी। भिक्खू ने कडाई के साथ कहा—इसी बित्ते पर लल्लू की कमाई खायगी। बड़ी रोने वाली चल बैठ घर के भीतर। कहीं दूर जा रहा है यह? लोग सैकड़ों कोस जाते हैं वे क्या आदमी नहीं होते? मैं अभी थोड़ी दूर जाकर लौट आता हूँ। देख, जो एक भी आँसू गिराया चलते वक्त।

पिछली बात ठिकाने पर लगी। वह असगुन के भय से घर के पिछवाड़े गूलर के पेड़ के नीचे चली गई। वहाँ एकान्त मे बैठ कर उमड़ रहे हृदय के बोझ को हल्का कर लिया।

माँ की गोद से निकलकर पिता के साथ पूनी जा रहा था। सामने घर के भीतर आधे मुडे हुए किवाड़ के पीछे से दो बडी बड़ी आँखें उसका अनुसरण कर रही थीं। पूनी अपने बिगड रहे

मन की विपन्न दृष्टि उधर चली जाने से रोक न सका, आँखें चार होगई। पूनी ने मुँह नीचा कर लिया। एक विषादमयी म्लानरेखा से उसका चेहरा और भी स्याह हो गया। वह अपने भाव को छिपाते हुए पिता का अनुसरण करता रहा।

गौरा की दृष्टि मे कितनी व्यथा थी, कितनी करुणा और कितनी थी प्रार्थनाएँ! पिता माता के संकोच से पूनी का सिर झुक गया था, पर गौरा वैसी ही खडी थी। उसने उस समय न जाने क्यों लज्जा का अपना अलंकार उतार फेंका था?

वह दृश्य पूनी के मन मे गड गया था। बड़ी दूर तक पिता उसके साथ चला गया, पर अपने मानसिक-जगत के द्वन्द से पूनी को किसी का ध्यान ही न था। पगडंडी की मोड़ पर रुककर भिक्खू ने कहा—तुम जाओ, अब मैं भी लौट जाता हूँ। देखो, शहर का वास्ता है। ठीक से रहना। खोज खवर देते रहना। तुम अपनी अम्माँ को तो जानते ही हो। उसका जी कितना कमजोर है। छुट्टी मिलने से घर जरूर आना। समझ गये।

पूनी ने उत्तर मे सिर हिला दिया। उससे बोला न गया।

हाँ तो भूलना मत—कहकर भिक्खू शीघ्रता से लौट पड़ा। उस समय उसका जी ठीक न था। वह सीधा घर नहीं गया। बहुत दिन के पडे हुए कई कामों को पूरा करके जाना ही उसने उचित समझा।

(२)

पूनी मार्ग मे अकेला चला जा रहा था। साँप की तरह रेंगती हुई पगडंडी उसके पीछे खेतों मे लुप्त होती जा रही थी। उसके चारों ओर दूर तक फैले हुए हरे भरे खेतों का उसके समीप कुछ भी अस्तित्व न था। वाग में वोलती चिड़ियों का

समुदाय कोई ऐसा विषाद उँडेल रहा था, जिसे वह सह न सका। पास ही स्वच्छ विस्तीर्ण तालाव की नील सलिल राशि वायु के साथ मिलकर लोल लहरें उठा रही थीं। उनमें भी जैसे एक करुण रागिनी वज रही थी। दिन थे, जव इन्हीं वस्तुओं ने उसके हृदय मंदिर को अलौकिक आनन्दरस से आप्लावित किया था। उसे मालूम पडा जैसे आज सवका स्वर वदल गया है। उसके हृदय का रुदन ही निसर्ग के प्राणों से प्रतिध्वनित हो रहा है।

प्रातःकाल के सुनहले उजेरे मे उसकी आँखो के आगे अँधेरा छाया था। वह मानों शून्य शब्दहीन संसार के वीच से कहीं चला जा रहा था। घर की स्मृति उसकी आँखों के सामने छायाचित्र की भाँति भूल रही थी। माँ की गोद, उसका वह दुलार नौकरी ने आज छीन लिया। नव-वधू गौरा की वे सजल आँखें! विवाह और गौने की अल्पकालिक मुलाकात मे लज्जा और संकोच का परदा पडा हुआ था। कव वैठकर हृदय खोलने का मौक़ा मिला था? अनेक वातें इकट्ठी हो गई थीं। इस वार विश्वास कुछ वढ़ा था। रात के पिछले पहरों मे जाग-जागकर हृदय एक-दूसरे के सामने रक्खा गया था। उन सुखों के ऊपर वज्र की भाँति नौकरी टूट पड़ी। विवाह से अवतक पूरे ढाई वरसों मे एक दिन उसका साक्षात् न हुआ था। पहले ही पैगाम आजाता तो ऐसा आघात न लगता। पूनी को नौकरी मिलने का जरा भी आनन्द न था। जिसने राहु और केतु की तरह आनन्द-चन्द्र का ग्रास कर लिया हो उसके लिए प्रसन्नता?

स्टेशन तक पहुँचने के ग्यारह मील के रास्ते मे न जाने वह कितने पेड़-पौधों से टकराया, न जाने कितने वरसाती गड्ढों मे गिरकर भीगने से वचा। आँखों के आगे के मार्ग का उसे जरा

भी ध्यान न था। गृह-जीवन की धुँधली छाया ही आगे-आगे दौड कर उसकी दृष्टि अवरुद्ध कर रही थी।

स्टेशन आया। गाँव के छोटे स्टेशनों पर दो-चार से अधिक आदमी ही बहुत होते हैं। उस दिन चढ़ने वाला कोई न था। पूनी बैठ गया। मन की भावना को विकसित होने मे और भी सहायता मिल गई। दो घंटे की प्रतीक्षा मे बैठ कर मन मे अनेक भाव उदय और अस्त हुए, सोचा—क्यों मैं व्याकुल हो रहा हूँ? फिर मिलेंगे, जल्दी-जल्दी छुट्टी लेकर आऊँगा। हर्ज ही क्या होगा? कुछ पैसे खर्च हो जायगे। पैसे की क्या, पैसे तो आदमी के हाथ का मैल है। पैदा करूँगा, खर्च करूँगा। कुछ बचाऊँगा भी। बचत की रकम घर भेज दिया करूँगा। माँ कितनी प्रसन्न होंगी? बापू खिल उठेंगे। घर आऊँगा तो—गौरा के लिए क्या क्या लाऊँगा?—हाँ, कोई बढ़िया किनारीदार साडी साडी उसे फबती भी है, और भाती भी। और-और लाऊँगा लिखने के लिये थोडे से कागज और पढने के लिए दो एक किताबें। पंडितजी की विभावरी 'बालापत्र-बोधिनी' पढ़ती थी न? वह एक किताब जरूर लाऊँगा। कागजों पर अभी उसने लिखा नहीं है। उसकी कितनी इच्छा है; वह कागज पर लिखे। पत्र लिखना सीख जायगी; तब तो मुझे भी लिख भेजेगी—प्रियतम, तुमने यह नहीं लिखा कि यहाँ कब तक आओगे। जी उसी ओर लगा रहता है, जिधर से मुड-मुड़ कर देखते हुए चले गए थे। पिछवाडे की भीत से बडी देर तक सिर निकालकर तुम्हें जाते हुए देखती रही थीं। वह दिन अब तक उसी तरह याद है। तुम्हारे आने पर ही चाहे उसे भूल सकूँ। अभी तो भुलाने पर भी नहीं भूलता। पत्र पाते ही आने की बात लिखना। अम्मा अच्छी है? रोज साँझ को

तुम्हारी याद होती है। शरम तो लगती है लेकिन उस चर्चा मे शामिल हो जाने को जी व्याकुल रहता है। अभी तीसरा दिन है। मैं चाहती थी कि अम्मा कुछ बात छेड़ें। वे गृहस्थी के धन्धों मे उलझी थीं, कहीं दूसरी तरफ ध्यान था। अन्त मे मुझे एक तरकीब सूझी। मैंने पूछ दिया—अम्मा, रेल घोड़े से भी जल्दी जाती है क्या ? वे बोल उठीं—घोड़ा क्या है वह सुनती हूँ पल मे कोसों उड़ जाती है, हवा से भी जल्दी। अब क्या है, बेटा नौकर हो गया। सब लोग एक बार चलेंगी। रेल भी देखेंगी, शहर भी देखेंगी। सुनती हैं शहर बड़ा भारी गाँव होता है। तुम्हारी बातें चल पड़ी, बहुत रात तक हम लोग उसी मे लगी रहीं। बुरा न मानों तो कुछ पूछूँ। तुम्हें मेरी भी कभी याद आती है कि नहीं ? सच सच लिखना, बनावटी नहीं।

एक बात और; तुम्हारी शंका ठीक मालूम पड़ती है। अम्मा रोज कहती हैं कि ठीक है। मुझे बड़ी शरम आती है। किसी के सामने सिर नहीं उठता। राधा तो उसी को लेकर मेरे पीछे पडी रहती है। कहती है मिठाई लाओ। बताओ मैं क्या करूँ ?

दूरसे गाडी की सरसराहट सुनाई दी। पूनी की विचारधारा रुक गई। वह सजग हो गया। चाहता था कुछ देर और गाडी न आती पर वह आगई। पूनी झट खिड़की खोलकर एक डिब्बे में घुस गया। सीटी देकर रेल चल पड़ी।

(४)

किसान के बेटे को जिसके लिए माँ-बाप का दुलार सुलभ था, पन्द्रह रुपये की क्लर्की एक अभिशाप से भी भीषण प्रतीत हुई। बाबूगिरी की अभिलाषा पर पाला पड़ गया। सुबह से जुतकर शाम तक कलम रगडते-रगड़ते नानी याद आने लगी।

शामको चलने के समय उँगलियाँ दुख जाती थीं। गर्दन सीधी नहीं होती थी। आँखों के सामने अँधेरा छाया रहता था। सिर भन्ना उठता था। तिस पर मी मैनेजर साहब चश्मे की कमानी सीधी करके अपनी बुद्धि को दो-चार खरी-खोटी सुनाकर रोज ही रोना-रो देते—बडी भूल की मैंने, आप तो बड़े धीरे लिखते हैं। कैसे काम चलेगा ? कुछ रफ्तार बढ़ाइये। उधर भी आप ठीक समय से आते हैं और इधर भी ठीक समय पर चले जाते हैं। यह अखबार का दफ्तर है। यहाँ घड़ी घंटों की गिनती नहीं। सबसे पहिले आना और सबसे पीछे जाना, काम मे कसर न करना खून-पानी एक करके अपनी ड्यूटी अदा करना यही यहाँ के नियम हैं। पूनी मन ही मन ऐसे उपदेशों से झुँझला जाता, लेकिन वह ठहरता नहीं नियमित समय पर अपने ठिकाने पर चला जाता। वह जी मे कहता—यह खूब, समय पर आने-जाने मे भी दोष है। पन्द्रह रुपये मे जैसे खरीद लेना चाहते हैं।

जब तक रहता, जी जान से मेहनत करता। लेकिन कारखानों के मालिकों को खुश करलेना क्या आदमी के वश की बात है ? वे आदमी, नहीं यन्त्र चाहते हैं। उनके हृदय होता ही कहाँ जो वे दूसरों का दुःख सुख समझ सके।

एक दिन ज्योंही पूनी चलने को तैयार हुआ। त्योंही मैनेजर साहब ने घडी की ओर देखकर कहा—जाते हो क्या ? काम तो आजकल बहुत ज्यादा बढ रहा है। घडी की पाबन्दी से काम न चलेगा।

पूनी—आपको जानना चाहिए कि मैं यहाँ अकेला हूँ। रसोई बनाना, सामान लाना, बर्तन मलना कितने ही काम हैं। इनके करने के लिए भी तो समय चाहिए। काम अगर अधिक है तो आपको और आदमी रखना चाहिए।

पिछला वाक्य कहते कहते उसके स्वर मे कुछ असहन-शीलता आ गई, पर उसने उसे छिपा लिया। वह उस दिन रुक गया और एक घंटे तक काम करता रहा। अँधेरा हो जाने के बाद वहाँ से चला।

तीसरे दिन शनिवार था। शामको एक चिट उसके पास आगई। उसने लेकर पढ़ा – काम की अधिकता के कारण दफ्तर कल बन्द नहीं रहेगा। सबको ठीक समय पर आजाना चाहिए।

पूनी का शरीर क्रोध से लाल हो गया। छुट्टी वाले दिन कितने काम करने को सोचे थे। वह चिट लेकर सीधा मैनेजर के पास पहुँचा और बोला--मै तो साहब कल न आ सकूँगा। बहुत सी और बातें सोचकर आया था, पर क्रोध के कारण और कुछ न कह सका।

मैनेजर—यह कैसे हो सकता है? मैं देखता हूँ, आप हमेशा ही काम को टाल देते है।

पूनी—आपकी दृष्टि को मैं दोष नहीं दे सकता, पर मैं असमर्थता के लिए लाचार हूँ। यह लीजिए मेरा इस्तीफा, मैं ऐसी नौकरी से बाज़ आया। दस की जगह आठ बजे आप बुलाना चाहते है, पाँच की जगह दस बजे रात तक छोड़ना चाहते हैं, तिस पर भी छुट्टी के दिन अवकाश नहीं!

मैनेजर—जाइये, यहाँ का काम आपके बिना रुका न रहेगा।

(५)

डेरे पर आकर पूनी ने एक पत्र घर के लिए लिख दिया। दूसरे दिन शाम को दिन भर की बेकारी से उसका जी घबडा उठा। वैसे छुट्टी का दिन एक पर्व का दिन होता था। हँसी खुशी

से बीतता था। उस दिन पहाड़ हो गया। आशा का आश्वासन न रहने पर आदमी निस्सार हो ही जाता है।

वह एक ठेकेदार के यहाँ एक छोटी कोठरी किराये पर लेकर रहता था। ठेकेदार के लड़के जगजीवन से उसकी बातें हुई। जगजीवन की वाक्यशूरता प्रसिद्ध थी। वह किसी बात को उधार न रखता था। उसने तुरन्त कहा—तुम छोडो यह निकम्मा शहर, और कानपुर जाओ। लक्ष्मी का नगर है। वहाँ धन्धे की कमी नहीं। सैकडों कारखाने है। हजारों सौदागर हैं, बड़े बड़े सेठ साहूकार भरे पडे हैं। ऐसे टिकिया-चोट्टे वहाँ नहीं रहते। मेरा कहा मानों, तुम आज की गाडी मे चल पडो। घर से पैर दिया बाहर, तो क्या दिल्ली क्या पेशावर।

पूनी को भी उसकी बात जँच गई। कहा—अच्छा, एक बार जाकर देखूँगा।

शाम की गाडी से वह कानपुर चल दिया। पहुँचा, नौकरी की तलाश की। बडी हैरानी और परेशानी के बाद भी कोइ आश्वासन न मिला। किसान का लाडला बालक था। होशियार होकर भी अपने हृदय के भावों को ज़ाहिर न कर सकता था। अब उसे मालूम हुआ कि कानपुर के पास धन है पर हृदय नहीं। वह दयाहीन निर्दय निष्ठुर यन्त्रों का नगर है, वह द्वेष-ईर्षा और छल-कपट का स्थान है। मनुष्यता और सौजन्य उस सुनहली लका से निवास नहीं करते।

बडी परेशानी के बाद एक मिल मे नौकरी मिली तो, पर तीसरे ही दिन वहाँ आदमियों की कमी हो गई। पूनी फिर इधर उधर बेकार घूमने लगा। गर्मी के दिन थे। स्टेशन के पास खुली जगह मे सोकर रात काट देता। दिन में फिर भाग्य को आजमाने निकलता।

अन्त में एक ईंटो के भट्ठे पर नौकरी लगी। उसीको पूनी ने बहुत समझा। भट्ठे का मालिक कलवार था। उसने कहा—हम तुम्हें रखते तो हैं पर काम संतोषजनक होना चाहिये। तुम अपने को पढ़ा-लिखा बतलाते हो। हम तुम्हे वैसा ही काम देंगे, पर हमारे यहाँ काम तीसों दिन होता है। छुट्टी का जिक्र नहीं।

ठीक है—कह कर पूनी काम पर लग गया। दिन भर या तो ठेलेवालों से झकझक करनी पड़ती थी, या ईंटे पाथनेवालों का काम लिखना पड़ता था। सुबह से जाकर रातको आठ-नौ से पहले छूटना न होता था। अब उसे प्रेस की नौकरी के मजो का अनुभव होता था।

महीने बीत गए। काम के बोझ से उसका चेहरा मर गया। आखें कोटर-लीन हो गईं। कपोलों की लाली धूप और धूल मे काफूर हो गई। खाने-पीने का समय न था। मौत के लाले पडे थे। सोचता था—कहीं और जगह लग जाए तो ठीक हो। लेकिन छुट्टी कब थी जो जाकर कुछ तलाशता। सात रुपये मासिक में दो रुपये किराये के चले जाते थे। अभी तक इतना रुपयां भी बचा न पाया कि एक रात को चुपचाप घर का टिकट कटाकर जान ले भागता।

छः सात महीने बाद घर से चिट्ठी आई। एक ईंट थापने वाले मुसलमान छोकरे से उसकी गर्मा-गर्मी हो चुकी थी। उसकी वजह से पूनी खिन्न था। घर की चिट्ठी पाते ही उसका जी धडक उठा। उसने कांपते हाथों से लिफाफा खोला, और जल्दी जल्दी बाँचने लगा। उसके चेहरे पर ताजे रक्त की लालिमा दाड गई एक हर्ष की तीव्र रेखा से उसका मुख खिल उठा।

वहाँ अपना कौन था। वह किसके हृदय मे अपने आनन्द

रस को उँडेले ? किसे सुनाये कि वह अब एक बच्चे का पिता हो गया है ?

उसके दुर्बल अंगों पर अनायास हर्ष का पहाड़ गिर पड़ा। क्षण भर के लिए स्थिर होकर रह गया। जरा ठहरने पर उस कोलाहल मे भी उसकी आँखों के सामने उसका घर प्रत्यक्ष हो उठा। माँ के मुख पर कितना अलौकिक आनन्द था, पिता की गंभीरता में हर्ष की हिलोरें कैसी स्पष्ट झलकतीं थीं। गौरा किस आशा और कौन-कौन सी कामनाओं से पूर्ण नीरव सलज्ज दृष्टि उसकी ओर डाल रही थी।—उन सबसे आकर्षक और मधुराकृति था नवजात शिशु। ऐसा सुन्दर, ऐसा भव्य और ऐसा मनोहर बालक तो कभी उसने देखा ही न था। वह देख-देखकर तृप्त नहीं होता था। उसकी बड़ी बड़ी आँखें, गुलाब जैसा मुख, आशा जैसे फूले हुए कपोल सभी कुछ दर्शनीय थे। पूनी सब कुछ भूलकर आनन्दसागर मे गोते लगाने लगा।

अनायास एक ठेले के उलट जाने से उसका ध्यान बिखर गया, वह चिट्ठी को फिर बाँचकर उसमे तन्मय होने का यत्न करने लगा, लेकिन किसी तरह वह अवस्था न आ सकी। ईंटों के हलचल मय व्यस्त संसार ने उसे वह अनुभूति किसी तरह न होने दी।

(६)

बडे दिनों से लालसा लग रही थी, अबकी वेतन पाते ही घर का टिकिट कटाऊँगा। इधर भिक्खू ने भी लिख भेजा, आकर बच्चे को देख जाओ।

पूनी का जी उछल पड़ा, लेकिन मन का आवेग तुरन्त दब गया। क्योंकि पिता ने घर के आर्थिक संकट का चित्र भी बड़ा

मार्मिक खींचा था। अब वह भी पिता था। एक कठोर उत्तर-दायित्व ने उसके जी के उल्लास को दबा दिया। वेतन लेकर उसने घर मनं आर्डर कर दिया। अपनी विवशता के आँसू फटी-मैली धोती के छोर मे पोंछ कर अपने काम मे लग गया।

महीने का खर्च कुछ पेशगी, कुछ उधार लेके चलाया। अपने मन की बलवती कामना को मसलकर कुछ समय के लिए हतचेत कर दिया। घर से कई बुलावे के पत्र समय-समय पर आते रहे, किन्तु पूनी विवश था। सिर पर जो कर्ज़े का बोझ उठा लिया था वह किसी तरह न उतरता था। पिता के सभी पत्रों मे वह आने का आग्रह देखकर अपनी विवशता पर गरम-गरम आँसू की दो चार बूँदें गिरा देता था।

उसका स्वभाव अब कुछ ऐसा हो गया था कि किसी भी छोटे बच्चे को देखते ही वह एक उत्सुकता से छटपटा उठता था। जी मे आता था कि सब काम-काज छोड़कर घर की ओर भाग चले और वहाँ अपने कोमल शिशु को गोद मे लिए आनंद मनाया करे। अब काम मे लगे रहने पर भी उसके चेहरे पर झुँझलाहट की रेखा अंकित न होने पाती थी। कार्य मे जी लगता था पर रात को उसकी आत्मा घर के दृश्यों के ही चित्रण मे लगी रहती थी।

कई अन्य स्थानों मे जाकर उसने नौकरी को ठीक भी किया था। अभी तक कोई अच्छी जगह मिली न थी। एक दिन अकस्मात एक रास्ता चलते सेठजी से उसकी भेट हो गई। बातें हुईं और उसी समय उदार सेठजी ने बीस रुपये मासिक पर अपने छोटे बच्चों को पढाने के लिए पूनी को रख लिया।

भट्ठे की नौकरी से तो प्राण छूटे पर कर्जे से अभी नहीं।

धीरे समझकर एक एक शब्द वाँचे; पर साहस नहीं हुआ। उसका शरीर काँप गया। मालूम पड़ा जैसे पत्र हाथ में रखने की चीज नहीं। बिच्छू और सर्पों से भी विषाक्त कोई विष उसमें सुरक्षित है।

उसने इरादा कर लिया कि क्यों वह समय व्यर्थ गँवाये, क्यों न बाजार से ले जानेवाली चीजें खरीद लाये ? वह तुरन्त बाजार की ओर भागा। वह मुँह माँगे दाम देकर कपड़ा खरीद लाया; बहुत से नये नये खिलौने खरीद लाया। लेकिन उसका सीना अभी तक धड़क रहा था। आँखें कुछ अशुभ देखने के लिए व्यग्र थीं। कान विष पीजाने के लिए तैयार थे। जिह्वा तलवार की धार पर रगड़ जाने के लिए साकांक्ष थी।

उसने खिलौनों को और चमकते हुए कपड़े को सामने रक्खा। चिट्ठी खोलकर सरसरी नजर से उसकी आवृत्ति करते करते वह कुछ क्षण के लिए अचेत हो गया। थोड़ी देर में एक लम्बी आह खींचकर कहा—मेरे लाड़ले-दुलारे ! तेरा जन्म और तेरी मृत्यु दोनों सच हैं या एक भी नहीं ?

वह घर नहीं गया। तभी से घर के नाम से उसे भय लगने लगा।



रक्तान्तर

मुकुल' ने आकर कहा—"वधाई देता हूँ।"

मैं विस्मित हो कर उसकी ओर देखता रह गया। कारण समझ मे न आया। सोचा, शायद श्रीमती की कोई खुशखबरी है।

दूसरे ही क्षण उसने 'भारती' का अंक मेरे सामने खोलकर रख दिया। खूब सुन्दर मोती जैसे अक्षरों में उपाधि सहित मेरा नाम छपा हुआ था, वह भी प्रथम पृष्ठ पर।

यह सौभाग्य मेरा! मेरे प्रथम प्रयास का इतना आदर! हृदय मे गुदगुदी मच गई। गर्व से छाती फूल उठी। एक सरसरी नजर से शीर्षक, नाम और कविता पढ़ गया। खुशी का ठिकाना न था। कुछ दिन पूर्व श्रीमती का पहला वच्चा सकुशल हो जाने का समाचार मिला था, वह खुशी भी उस दिन जैसी न थी। किन्तु मैंने मन के भाव को दवाने का यत्न करके कहा—"तो क्या इनाम चाहते हो? तुम्हे तो—"

मुकुल ने वात काटकर कहा—"अभी क्या है, इधर भी देखिये।"

उसने सम्पादकीय स्तम्भ खोलकर रख दिया। सम्पादक जी ने लिखा था—"'भारती' के वारह वर्ष के जीवन मे यह पहली कविता छापने का सुयोग उसे मिला है जिसकी समता करने वाली कविता के दर्शन वर्षों से हिन्दी पाठकों को न हुए होंगे। कवि महोदय इस युग के कालिदास प्रतीत होते हैं। हम विशेष

क्या लिखें। हम तो इतना ही कह सकते है कि हम यथाशक्ति प्रयत्न करेंगे कि उनकी सभी सुन्दर रचनाएँ 'भारती' मे स्थान पायें।"

और भी शायद कुछ था पर अपने साथी सुकवि 'मुकुल' के सामने उसमे अधिक आँखे गडाये रखना ठीक न समझा। इतना कहते हुए अंक उनकी ओर खिसका दिया—"यह और कविता लेने का ढंग है। मुझे फुर्सत कहाँ है, जो ऐसे वेकार कामों मे पड़ा रहूँ?"

मुकुल—"अजी, वाह! आप तो परमहंस बन रहे है! यह कोई मामूली वात है? जानते है, अब आप हिन्दी मे अमर कवि वन गये! यहाँ कलम घिसते-घिसते दिमाग पच्ची हो गया है, कभी किसी भलेमानस ने जिक्र तक नहीं किया।"

मैं—"चलो जी किसी और को वनाना। यों ही भूखे हो तो थोड़ी मिठाई खिला दूँ।"

मुकुल—"ना जी मैं दान नहीं चाहता। हाँ, अगर मैंने इनाम का काम किया हो, तो उससे वंचित नहीं रखना चाहिए।"

हृदय तो नाच रहा था। दो तश्तरियों मे मिठाई मँगाई। 'मुकुल' महोदय सम्भलकर बैठ गये।

उसी समय पोस्टमैन आ पहुँचा। 'भारती' का अंक मेरे हाथ मे दिया, फिर एक पत्र और मनीआर्डर फार्म के साथ दस-दस रुपये के पाँच नोट पकडा दिये। पत्र भाई साहव का था। उसे रख लिया। मनीआर्डर 'भारती' सम्पादक ने भेजा था। कूपन पर लिखा था—"आपकी कविता मुझे कितनी पसन्द आई, कह नहीं सकता। ये रुपये कविता के मोल के नहीं—हमारी हैसियत के अनुसार है। ऐसी अमूल्य चीज का मोल भला हम दे ही कहाँ

सकते हैं। आशा है, आप इन्हे स्वीकार करके अनुगृहीत करेंगे तथा अपनी रचनाएँ विशेष रूप से 'भारती' मे भेजा करेंगे।"

मैंने कॉंपते हुए हाथ से हस्ताक्षर कर दिये। 'मुकुल' ने रस-गुल्ला मुँह मे डालकर पूछा—"आज तो पाँचो घी मे हैं। भला, कहाँ से आ धमका है यह ?"

मैंने कुछ बनकर कहा—"उन्हीं 'भारती' सम्पादक ने भेजा है। लालच मे फँसाने का यह अच्छा तरीका है।"

मुकुल—"एँ! एकदम पचास रुपया! तुम दोस्त, बड़े भाग्य-शाली हो ?"

मैं—"यही न भाग्य है, कि तुकन्वदी में जीवन वरवाद करता रहूँ। ऐसी कविता और रुपये की मुझे दरकार नहीं।"

'मुकुल मुझे समझा बुझाकर घर चला गया, पर मैंने उसका उपदेश उसके सामने न सुना। लेकिन उसके जाने के बाद मैंने कविता की कापी निकाली और गुनगुनाने लगा। उसी दिन एक लम्बी सी रचना आधीरात तक जागकर लिख डाली।

तीसरे दिन सम्पादक जी का एक और पत्र आया। उसमें मेरी कविता की प्रशंसात्मक आलोचनाओं के कई कटिंग थे। पत्र मे सम्पादक जी ने और कविताएँ शीघ्र भेजने का अनुरोध किया था।

उसी दिन मैंने एक साथ तीन रचनाएँ चुनकर रजिस्ट्री से भेज दीं।

(२)

'भारती' का दूसरा अंक निकलते-निकलते मैं ख्यातनामा कवि हो गया। कुछ कवियों को बुरा भी लगा था। उन्होंने विरुद्ध

अलोचनाएँ छपाईं। वाइरन की तरह मुझे मालूम हुआ कि मैं एक ही रात मे प्रख्यात हो गया। आलोचनाओं ने मेरी कीर्ति को और भी सर्व-व्यापी कर दिया।

'भारती' से हर महीने पचास-साठ रुपये आने लगे। अन्यान्य पत्रिकाओं की माँग भी चारों ओर से आने लगी। कीमत भी वढ़-वढ़ कर लगने लगी। एक एक कविता के लिए सैकड़ों रुपये लोग देने को तैयार थे। अच्छा-बुरा जो कुछ लिखा था, लोग ले गये। प्रतिदिन जितना भी लिखता चला जाता। वहुत लोगो को निराश लौटा देना पड़ता था।

इतनी ख्याति का सौभाग्य शायद ही किसी लेखक को मिला हो, और उसके साथ ही धन की वर्षा भी। ऐसी कोई डाक न आती थी जव कागज-पत्रो का ढेर न लग जाता हो। प्रातःकाल उठने से पूर्व प्रकाशक लोगों के प्रतिनिधि आकर प्रतीक्षा करते थे। मेरे स्वभाव मे स्वतः ही कुछ गम्भीरता आगई थी। आत्मगौरव की संजीदगी से दिल-दिमाग भी कुछ के कुछ हो गये थे।

प्रेसों से आई हुई चिट्ठियों के जवाब देने के लिए एक आदमी को नियुक्त करना पड़ा था। एक दिन 'भारती' प्रेस की एक चिट्ठी मिली। उस समय एक सुन्दर कविता की अन्तिम लाइन का अन्तिम चरण लिख रहा था। उसे पूरा करके दो-एक वार पूरी कविता को वाँच कर और खुश होकर, उस चिट्ठी को लेकर पढ़ने लगा। सम्पादक महोदय ने लिखा था—"मुझे अधिकार तो नहीं है पर धृष्टता-पूर्वक एक प्रस्ताव आपके सामने रख रहा हूँ। क्षमा कीजियेगा। 'भारती' को आप जानते हैं। भारती-प्रेस की दशा से भी आप परिचित हैं। उसका हिन्दी मे

स्थान क्या है, यह भी कहने की बात नहीं। इस समय डेढ़ लाख की पूँजी उसकी अपनी है। मैं तो एक सेवक हूँ। यथाशक्ति अब तक सेवा की है। अब मैं 'भारती' किसी के हाथ मे सौंप देना चाहता हूँ। आप उसके सर्वथा योग्य हैं। यदि आप कृपा करके मेरे प्रस्ताव को स्वीकार करें तो 'भारती' की आधी सम्पत्ति के आप उसी दिन से अधिकारी होंगे जिस दिन से आप कार्य भार हाथ मे लें। लाभ मे भी सदा आपको आधा भाग रहेगा। शेष आधा भाग मेरे बाद सार्वजनिक साहित्यिक संस्थाओं का रहेगा। मेरा काम अब समाप्त हो गया है। मैं अब कुछ दिनों के लिए हिमालय की यात्रा करना चाहता हूँ। आपके पत्र की प्रतीक्षा मे मेरा अन्तिम निर्णय अटका हुआ है। अगर आप इनकार करेंगे, तो फिर विवश होकर मुझे दूसरे के लिए भटकना पड़ेगा।"

पत्र पढ़कर मैं अपनी कुर्सी पर नहीं रहा। कहीं का कहीं पहुँच गया। भारती-सम्पादक की दरिया-दिली पर सौ जान से निछावर होने लगा।

मैंने फाउन्टेन पेन उठाया, और एक लेटरफार्म पर लिखा "आपकी कृपा का भार मेरे ऊपर थोड़ा नहीं है—और अगर सच कहूँ तो वह इतना है कि मैं उसे उठाने मे समर्थ नहीं हो रहा हूँ—तिस पर और यह पहाड़। आप यह तो सोचें, कि मैं—एक क्षुद्र व्यक्ति—भला दब जाऊँगा कि रहूँगा? यों मैं मातृभाषा का सेवक कहलाने से नहीं डरता, पर आप मुझे जहाँ खींच रहे हैं, वहाँ के योग्य मैं किसी हालत मे नहीं हूँ। आपका आदेश यों तो मेरे सिरमाथे है, पर आपने क्या ख्याल करके ऐसा सोचा। मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं बता सकूँ कि आप भ्रम में हैं।

आपकी पूर्ववत् कृपा ही मेरे लिए यथेष्ट है और अधिक पाने की योग्यता का मुझ मे अभाव है। आप अवश्य ही मेरी बात पर विश्वास करेंगे।"

मैंने पत्र तो डाक मे डलवा दिया पर जी मे एक हलचल मच गई। वह किसी तरह न गई। जब से मैं लेखक बना हूँ, उसके चौथे महीने साहित्य-सम्राट् बनकर 'भारती' के मुख पर जा डटूँगा। मेरे सामने एक सुनहला संसार पड़ा था।

एक बार भी मेरे मन मे उस दीन लेखक का चित्र नहीं आया, जो आजीवन सरस्वती के मन्दिर मे अपनी अञ्जलि अर्पित करता रहा, पर कभी प्रशंसा के दो शब्द न पाये। यह कोई सोचने की बात भी न थी! ब्याहशादी मे मौत का रोना कोई नहीं रोता।

(३)

अजी कुछ न पूछिये। सम्पादक जी तो मेरे पीछे ही पड़ गये। फौरन ही लिख भेजा—"बहुत मामलों मे मैं गलतियाँ कर चुका हूँ पर मुझे निश्चय है कि यहाँ मैं सतर्क हूँ। कभी ग़लती न करूँगा। बस, अब आप आकर चार्ज समझ लीजिये—मुझे फ़ुर्सत दे दीजिये, कुछ साँस ले लेने की।"

मैंने हृदय की गुदगुदी को और सुहलाते हुए सोचा—वाह कैसा मौका हाथ लगा है। क्या मुझ से ईर्ष्या करने वाले हिन्दी के बडे से बडे लेखक न होंगे?—कुछ उन समालोचकों की भी याद आई जो मेरे उत्कर्ष को देखकर आँखों मे दर्द अनुभव करते थे और मेरी रचनाओं का कडी आलोचना से स्वागत कर चुके थे। चलो उनके कलेजे पर मूँग दलने मे और

भी मजा आयेगा, यद्यपि उन लोगों ने मेरे विज्ञापन में चार चाँदी ही लगाये हैं।

इतने मे 'मुकुल' महोदय पधारे। हाथ में बाम्बे क्रानिकल की एक प्रति थी और एक था 'माधुरी' का ताजा अंक। मैंने पूछा—"कहिए जी क्या खबरें है ?"

"खबरें क्या हैं, बस जहाँ देखो एक जनाब ही की धूम है।"

'तब भी तो ?"

"तब क्या सच ही कहता हूँ।"

"अजी, क्यों बनाते हो ? कहीं किसी समालोचक ने धज्जियाँ उड़ाई होंगी।"

"पर जनाब समालोचक भी तो ऐरों - गैरों पर कृपा नहीं करते। मैं तो परमात्मा से मनाता हूँ कि मेरी वे धज्जियाँ ही उड़ायें। किसी तरह नाम भी तो लें।"

"वाह, जी वाह, क्या खूब कही ? तो यही धूम की बात आप तोहफे के बतौर लाये हैं ?—अच्छा, लाइये तो सही, देखें तो जरा।" मेरे मन मे देखने की उत्कण्ठा हो रही थी।

'मुकुल जी' ने 'माधुरी' का अंक खोलकर रख दिया। लेख का हेडिंग था 'हिन्दी के कलाकारों का भंडाफोड़।' पढ़ा, क़रीब क़रीब सारा लेख मेरे ही ऊपर लिखा गया था। मेरी रचना का कौन सा भाव संसार के किस कवि से लिया गया इसका मार्मिक विश्लेषण था। दुनियाँ के प्रसिद्ध प्रसिद्ध प्रायःसभी लेखकों की रचनाओं मे से चोरी का इल्जाम मेरे ऊपर लगाया गया था। ऐसा मालूम पडता था, जिसने वह लेख लिखा होगा, उसका पाण्डित्य अगाध होगा, पर उसने यह सोचने का शायद विचार

तक नहीं किया कि मै तो उसके बताए लेखकों मे से तीन चौथाई से प्रायः अपरिचित हूँ।

पढ़कर मैंने 'मुकुल' से कहा—"देखी, साहित्यकों की चोटें! क्या इसे समझें, कि फूल बरस रहे हैं?—समालोचक जी से कौन कहे कि कर्लाइल और रस्किन जो बात सोच सकते हैं वह कोई दूसरा भी सोच सकता है, चाहे उसने उन्हें न भी पढ़ा हो।"

"माना कि आपने इनमे से एक को भी नहीं पढ़ा, पर क्या यही कम गौरव की बात है कि आपका अध्ययन इतना विस्तृत माना जाता है।"

'पर आप नहीं जानते, गुड़भरी छुरी की मार भी मीठी नहीं लगती।"

"लोग यह भी कहते हैं, कि 'बदनाम जो होंगे तो क्या नाम न होगा'–पर यह मैं मानता हूँ कि ये सब आपके लिये नहीं है।"

"क्या?"

"यही कि आप तो वहाँ पहुँच गये हैं जहाँ हिन्दी के समालोचकों की आवाज धीमी पड़ जाती है?"—बस उसने 'बाम्बे क्रानिकल' खोलकर रख दिया।

पूरे तीन कालम का एक लेख आद्योपान्त मेरी प्रशंसा मे लिखा था। एक जगह लिखा था,—'हिन्दी का यह सौभाग्य है जो उसे ऐसा प्रतिभासम्पन्न लेखक मिला है।"

'मुकुल' ने कहा, "मेरा यही कथन है कि हिन्दी वाले अब जो कीचड़ उछालते हैं, वह समालोचना नहीं बल्कि जलन है?"

"तभी तो मैं कहता हूँ कि असफल लेखक समालोचना का

चाबुक लेकर बैठ गये हैं। जो आगे बढ़ता है सड़-से उसकी पीठ पर जमाते हैं।"

"इसका एक ही उपाय है कि "बाइरन" की तरह इन्हे मुँह तोड उत्तर दिया जाय। एक ऐसा पत्र अपने हाथ मे किया जाय कि—"

"पर यह सब मुझे पसन्द नहीं है:—भारती सम्पादक 'भारती' मेरे सिर पर डाल रहे हैं पर मैं इसी से नहीं चाहता लेकिन देखता हूँ कि वे अड़ गये हैं।"—कहकर मैंने सम्पादक जी का पत्र 'मुकुल' के हाथ मे दे दिया। संक्षेप में उसे बता भी दिया।

'मुकुल' तो मेरे सिर हो गया कि ऐसा मौक़ा मैं न जाने दूँ। मैंने बहुत इधर-उधर की बातें कहीं, कठिनाइयाँ सामने रक्खीं, पर वह क्यों मानने लगा? आखिर मुझे कहना पड़ा—"अच्छा, देखूँगा।"—पर मैं जानता हूँ मेरा अन्त:करण बहुत पहले से ही भारती- सम्पादक की कुरसी पर अधिकार और गौरव के साथ बैठने को लालायित हो रहा था।

घर के, बाहर के, आस-पास के तमाम हितैषियों ने वही कहा, जो मुकुल ने कहा था। कुछ दिन पहले, जब बाहर जाकर पढने की बात चल पडती थी, तो श्रीमती जी मुँह टेढ़ाकर लेती थीं। आज उन्होंने भी स्वीकृति दे दी और खुद भी बच्चे को साथ लेकर चलने को तैयार हो गई!

तमाम परिस्थिति का गौरवमय चित्र मेरी आँखों के सामने अपूर्ववर्ण-वैचित्र्य के साथ उपस्थित था।

(४)

'मुकुल' वर्षों से कविता के मैदान मे खम ठोक रहा था।

वह कवि था—निरा-निरा कवि। सीधा-साधा, भोला-भाला प्रतिभाशाली पर दबा हुआ, अपने ऊपर विश्वास न रखने वाला। उसी सीनियर को अपना जूनियर बनाकर, किन्तु एहसान का भार उसके कन्धों पर रखकर, शान के साथ मै 'भारती' सम्पादक के आसन पर जाकर बैठ गया।

मेरे आने से पहले ही 'भारती' मे इस नवीन परिवर्तन की सूचना निकल चुकी थी। साहित्यिक जगत मे एक तहलका मच गया था। जब तक मै पहुँचूँ-पहुँचूँ तब तक 'भारती' की ग्राहक-संख्या बढ़कर सवाई ड्योढ़ी हो गई।

अभी तक दिल्ली राजधानी थी। अब वह साहित्यिक-तीर्थ भी बन गई। जो उधर से गुजरता वह एक ट्रेन छोडकर मेरे दर्शनार्थ भारती-प्रेस मे उपस्थित होने की कोशिश जरूर करता। चिड़ियाघर के लिये जैसे भीड़ उत्सुक रहती है, वैसा ही भारती-भी कार्यालय हो गया। सुबह से शाम तक लोगों से मिलते-मिलते मैं हार जाता, पर गौरव भी कम नहीं प्रतीत होता। सम्पादन और प्रेस प्रबन्ध के लिये भी समय नहीं बचता। वास्तव मे 'मुकुल' को स्टाफ मे लेकर मैं बहुत कुछ निश्चिन्त हो रहा था, नहीं तो आटा-दाल का भाव मालूम पड़ता।

एक दिन जरा फुरसत हुई थी। मैं 'मुकुल' से कुछ गपशप छेड़ बैठा था कि फोन की घंटी बजी। मैंने चपरासी को इशारा कर दिया। वह झटपट रिसीवर कान से लगाकर सुनने लगा। मालूम हुआ, मेरे प्रशंसक समालोचक महोदय, जिन्होंने बाम्बे क्रानिकल मे मेरे बारे मे लेख लिखा था, पधारे है। मुझ से मिलना चाहते है।

मैंने खुद जाकर रिसीवर ले लिया, और कहा—"आइये, पधारिये। मुझे आप से मिल कर बड़ी खुशी होगी।"

मैं अपने खास कमरे मे चला गया। जरा देर में एक नीले रङ्ग की कार बरसाती मे आकर ठहर गई। एक लम्बे छरहरे बदन का आदमी मेरे कमरे मे घुस आया। हम दोनों ने अँग्रेजी ढङ्ग से हाथ मिलाया। मै कुछ कहने ही को था कि कमरे का परदा उठाकर एक अजीब सा आदमी घुस आया। सीधा मेरे सामने आकर खडा हो गया। उसका सूखा-सा चेहरा, मरी सीं आँखें झुर्रियोंदार चमडा, कठिन-सी रूप-रेखा, मैले-कुचैले कपड़े कुछ जरूरत से अधिक अरुचिकर लगे। कुछ क्रोध, कुछ ग्लानि, कुछ घृणा और कुछ उपेक्षा के भाव से मैंने पूछा—"क्यों जी, क्या चाहते हो ?"

उसने कहा—" 'भारती' की पिछली फाइल पढ़ना चाहता हूँ।"

मेरे शरीर मे आग लग गई। मन मे कहा—" 'भारती' की फाइल और यह शक्ल !" फिर उससे कुछ रुखाई के साथ कहा—"उसके लिये उधर, उस कमरे मे जाइये।"

"तो मैं गलत आगया हूँ ! क्या ? पहले इसी तरफ सम्पादक लोग बैठते थे। होगा, हाँ होगा —मैं भूल गया होऊँगा। कितने दिनों से आ भी तो नहीं पाया। वे इतने जालिम हैं कि घर से बाहर पैर नहीं देने देते। अच्छा, तो अब मैं वहीं जाऊँ ·· ।"

मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया, सिर्फ सिर हिला दिया। वह सम्पादन-विभाग की तरफ़ चला गया।

जो मेरे सम्बन्ध मे एक लेख लिख चुके थे, जो कुछ मिनट पहले फोन मे मुझसे आलाप कर चुके थे, जो कई मिनट से मेरे पास बेतकल्लुफी से कुर्सी पर बैठे थे, उन्हें अगर मैं अपना मित्र

कहूँ तो कुछ अनुचित न होगा। उसके चले जाने के वाद मैंने अपने आगत मित्र से वातें कीं। अपनी तारीफ सुनी, उनकी मार्मिकता की सराहना की, हृदय को खोला, मुख को प्रफुल्लित किया, जैसे दो सम्भ्रान्त व्यक्ति करते हैं। वहुत वेतकल्लुफी से वात कीं, पर गम्भीरता और शिष्टता के परदे मे वहुत कुछ छिपा भी रक्खा। 'जितना जहाँ शोभा देता है, वहाँ उतना ही चाहिये' एक कलाकार की हैसियत से मुझे यह कह सकने का अधिकार प्राप्त है। लेकिन जैसा जहाँ शोभा दे, वैसा वहाँ कर सकने का दावा रखकर अभी प्रस्तुत होने मे मुझे देर है। इसी से मेरे मित्र को मेरी वातो मे रस भी मिला, तो कुछ खारापन भी।

फिर मैं उन्हे भारती-प्रेस का प्रत्येक विभाग दिखाने ले गया। सव जगह घुमा-फिराकर ले आया सम्पादन-विभाग मे। वहाँ पहुँचते ही मेरी दृष्टि उस आदमी पर पड़ी, जिसने थोडी देर पहले अपनी अवाञ्छित उपस्थित से मेरे मन को कुछ अप्रस्तुत सा कर दिया था। वडे इतमीनान से एक कुरसी पर वैठा हुआ 'भारती' की फाइल मे आँखें गडाये था, जैसे गर्मी का प्यासा आदमी शर्वत के गिलास को मुँह से लगाये हो। उधर कुछ ध्यान न देकर मैंने अपने स्टाफ के लोगों का मित्र से परिचय कराया। 'मुकुल' का परिचय इस प्रकार दिया—"आप भी एक कवि हैं। वडे होनहार हैं। वड़ी फड़कती हुई जानदार चीज लिखते हैं।

इस तरह कर-करा के कोई एक घण्टे वाद उन्हे विदा किया। जाते समय वे प्रतिज्ञा करते गये कि शीघ्र ही अमेरिकन और इंग्लिश पत्रों मे मेरी काव्य-कला की चर्चा करेंगे। लिखेंगे कि इस वैज्ञानिक युग मे भी मनुष्य का हृदय, हृदय ही रहा है, वह मशीन नहीं वन गया है।

उनके जाने के बाद मैं एकान्त मे बैठकर अपनी कविताओं पर स्वयं मुग्ध होने लगा।

(५)

"यह भी खूब है कि यह आदमी रोज यहाँ आकर डट जाता है। भला, यह कौन है ?"—मैंने मुकुल से कहा।"

"कोई गरीब निठ्ठला है, पढ़ने का शौकीन मालूम पडता है।"

"पर यह भारती-कार्यालय है, कोई वाचनालय तो नहीं है।"

मुकुल ने कहा—"शायद कहीं पास ही रहता होगा, या और कहीं पढने का सुभीता नहीं पाता होगा।"

"जरूर यही बात है। भला, ऐसी मनहूस शक्लों के लिये वाचनालयों मे जगह कहाँ ?—वही बदस्तूर कपडे हैं गन्दे, फटे और पुराने ! सफाई का तो शायद नाम नहीं सुना है, शौक तो सभ्य सोसाइटियों का है, पर जरा रंग-ढंग देखिये।"

मुकुल ने कहा—"हाँ, है तो ऐसा ही।"

"तो तुम इसे मना नहीं कर सकते ?"

"मैं देखता हूँ गरीब है। चुपचाप आता, पढता और चला जाता है। इसी से कुछ नहीं कहता।"

"नहीं कहो। इसे मना कर दो।—उस दिन जब बम्बई से वे आये थे तो ये हजरत उनके साथ ही साथ पहुँचे और लगे मुझपर हुक्म चलाने। बडे अहमक आदमी हैं !"

"अच्छा, यहाँ तक ?"

"हाँ. तभी तो कहता हूँ कि अगर कल भी आवें तो कह देना, यह कमरा सम्पादकों के ही लिये है, पब्लिक के लिये नहीं।— 'भारती' पढ़नी हो तो कृपाकर सार्वजनिक वाचनालय में जाइये।"

'मुकुल' चुप। बिलकुल चुप। तब मैंने फिर कहा, "शायद तुम्हें संकोच होगा। तुम कह न सकोगे ? अच्छा, तो कल मैं ही कहूँगा।"

"हाँ, यही दुरुस्त होगा।"—'मुकुल' ने उत्तर दिया।

दूसरे दिन सुबह से ही मुझे जहाँ तहाँ जाना-करना पड गया। बैंक मे हस्ताक्षर का झगडा था। वहाँ गया। फिर एक साहित्यकों के ग्रूप मे बैठकर फोटो खिचवाया, यद्यपि फोटो लिये जाने लायक समय न रह गया था। एक बार स्टेशन गया, वहाँ एक दोस्त को विदा किया। इसके अलावा भी कई जगह इधर उधर गया। करीब साढ़े चार बजे कार्यालय मे पहुँचा। साथ मे एक देवीजी थीं। उन्हें कार्यालय दिखाने ले गया था। सम्पादन-विभाग मे घुसा तो वहाँ कोई भी न था। अकेले वे ही हज़रत अपने बड़े-बडे रूखे बालों मे दो उँगली डाले 'भारती' का क्रिया-कलाप कर रहे थे। दरवाजे के पास ही थे न, इसीसे उनके शरीर से पसाने की जो बदबू फैल रही थी वह मेरे और शायद मेरी संगिनी के भी नाकों मे भर गई। जी मै आया एक ठोकर से कुर्सी समेत उन्हें जमीन पर धक्का दे दूँ, पर जब्त कर गयो। झटपट देवीजी को दिखलाता हुआ अन्दर चला गया।

दूसरे दिन दफ्तर गया तो निश्चय कर लिया था आज आते ही कड़ी फटकार से स्वागत करूँगा। मैं अपने कमरे के खुले

दरवाजे से ताकता ही रहा पर पता न चला, वे कब चुपचाप आ पहुँचे। सम्पादन-विभाग मे गया तो जनाब उसी तरह डटे थे। मैं उत्तेजित होकर उसके पास जाकर खडा हो गया। देखा, तो मेरी कविता खुली हुई थी—वही कविता, जिसने मुझे साहित्य संसार में लेखक के रूप मे सामने रक्खा था, जिसकी धाक ने बडों-बडों को मेरी प्रतिभा का कायल बना दिया था।

रुकावट पाने से प्रवाह ऊँचा होता जाता है, और ढाल पाते ही फिर नीचे सरक जाता है, उसी तरह मेरा गुस्सा आसमान को उठ रहा था—वह पाताल मे समा गया।

मैं खड़ा-खडा देखने लगा। वह तन्मय हो रहा था। मेरी खबर उसे न थी। खडे-खडे मुझे यह भी मालूम हुआ कि उसकी आँखें सूखी नहीं हैं, बरस रही है। वह उन्हे जब-तब पोंछता जाता है और पढ़ने मे लगा है।

वह कविता भी करुण-रस की थी जिसने बहुतों को रुलाया होगा इसी से मैंने ख्याल किया कि जरूर ही यह कोई काव्य-मर्मज्ञ है। रसकी अनुभूति से गद्गद् होकर हृदय की निधि को लुटा रहा है।

अबतक अपनी कविताओं पर लोगों को हँस-हँसकर प्रशंसा करते ही मैंने देखा था। चुपचाप रो-रोकर पढते आज ही देखा। इसीसे शायद उसने मुझे बहुत ही आकर्पित कर लिया। जिसके लिये बिना बात कुछ क्षण पहले मैं क्रोध से उबल रहा था। गुस्सा ठण्डा पडकर अब श्रद्धा जम रही थी, इसीलिये कि उसकी प्रशंसा की यह नूतन प्रणाली सब से मौलिक थी।

उस दिन थोडी देर खड़े रहकर चुपचाप मैं अपने कमरे में लौट गया।

(६

शाम का चाय पीते समय, 'मुकुल' से मैंने पूछा, "कुछ पता चला वह आदमी कौन है?"

"मैंने चलाया भी नहीं, क्योंकि आपने तो खुद ही उसका भार ले लिया था।"

"मैं समझता हूँ कि वह कोई अच्छा साहित्यिक है।"

"हो सकता है।"

"मुझे कुछ योंही प्रतीत हुआ है, क्योंकि वह कितने मनोयोग से पढ़ने बैठता है। पहले सोचा था, जाकर कहूँगा, पर पीछे सोचा, क्या हानि है—बेचारे को पढने ही क्यों न दिया जाय?"

"यह आपने अच्छा ही किया। अपना क्या आता-जाता है? एक कुर्सी पर आकर बैठ जाता है और शान्ति से बैठा बैठा चला जाता है। इतना ही सा उसका कार्यक्रम है। फाइल भी एक से अधिक कभी नहीं लेता।"

दूसरे दिन जब फाटक से वह घुसता हुआ नज़र आया तो उसकी मूरत मुझे बेढंगापन न लगी। वह वही था, पर मेरे मन की वृत्ति अब कुछ भिन्न हो गई थी। कठोरता की जगह कोमलता, घृणा का जगह श्रद्धाभाव और कोप की जगह शान्ति ने इसलिए अधिकृत करली कि वह मेरी रचनाओं का पाठक था। मेरी रचनाओं के पाठकों और प्रशंसको की कमी क्या है? किन्तु उस विपुलता मे ऐसा भावावेश आँखों से तो नहीं देखा। सब के पलडे मे अकेला वह तुलकर मेरी दृष्टि मे भारी तय हो गया।

थोडी देर बाद मैं स्वयं वहाँ जा पहुँचा। 'मुकुल' अस्वस्थ थे। 'भारती' का अंक तड़ातडी मे निकल रहा था। स्टाफ के और लोग भी व्यस्त थे। ज्यों ही मैं जाकर खडा हुआ कि उसने

फाइल की याचना की। मैंने कहा—"बैठिये ... ...मिलेगी।"—और निकालकर दे दी।

वह लेकर बैठ गया। मैं उसकी व्यग्रता पर कौतूहल-भरी दृष्टि डाले खडा रहा। उसने झटपट मेरी वही कविता निकाली और उसे आँखों के रास्ते पीने-सा लगा।

"इसे कितनी पसन्द आ गई है ये"—यह सोचकर गर्व से मेरी छाती फूल गई। थोडी देर मे फिर वही अश्रुप्रवाह, वही आग्रह और वही सलग्नता। मैं खड़े खड़े थक कर बैठ गया, पर उसकी तन्मयता अभंग रही।

कमरे मे जब कोई नहीं रहा—केवल मैं ही उसकी निश्वासों को सुननेवाला रह गया, तो मैंने धीरे से पूछा, "आप यहीं रहते हैं?"

उसने सुना नहीं, जैसे निश्चिन्त था कि उसे कोई संबोधित नहीं कर सकता। अपनी श्रेणी मे गिनकर कौन यों उससे बात-चीत छेड़ेगा?

मैंने फिर जरा जोर से कहा, "क्यों जनाब आप यहीं रहते हैं?"

कुछ अप्रस्तुत-सा, कुछ विस्मित-सा और कुछ अवश-सा होकर वह बोला, "मैं?"

"हाँ।"

"उत्तर मिला, "हाँ, यहीं दिल्ली मे।"

"आप क्या पढते हैं?"

"कुछ योंही देख रहा हूँ।" एक सर्द निश्वास मुझे खूब सुनाई दी।

"आप काम क्या करते हैं ?"

उत्तर उसके आँसुओं ने दिया। मुझे मालूम होने लगा, जैसे मैंने छेड़छेड़ कर उसके मर्म को छू दिया हो, पर मर्म की वह कौन-सी मृदु शिरा थी, इसका पता न लगा। मैं भी चुप हो गया, पर वह जैसे वह उठा था वैसे ही वहता रहा। कुछ और तरल हो गया।

अन्त मे मुझे कहना पड़ा—"क्षमा कीजिएगा। मैंने आपको अनुचित रूप से तंग किया। मुझे यह सब न पूछना था।"

"जी नहीं, आप पूछिये। मै बताता हूँ। इस तरह कह कह कर मैं अपने को हलका कर लूँगा। मैं बहुत दब रहा हूँ।"

उसने मेरे सामने 'भारती' खोलकर रख दी। मेरी वही कविता सामने थी। मेरा रोम-रोम उत्कट व्यग्रता से उसकी अगली बात सुनने के लिये कान बनकर बैठ गया। उसने गले को साफ करके और आँसुओं को पोंछकर कहा, "यह कविता—" बस, उसका कण्ठ अवरुद्ध हो गया।

मेरा दिल फड़क उठा। उतने ही मे सोच डाला "शायद कविता उसके दिल मे चुभ गई है। मेरा परिश्रम सफल है। उसका एक-एक आँसू मेरी विजय का एक एक मोती है।"

उसने फिर कहा, 'मैं कुछ पढ़ता नहीं। इस कविता के लिये ही मैं दौड़-दौड़कर यहाँ आता हूँ।"

मैंने सोचा "इतनी पसन्द है इसे। देदूँ 'भारती' का वह अंक लाकर ?" किन्तु फिर मैंने कहा, "इस कविता के लेखक के नाते मैं पूछना चाहता हूँ कि इसमे ऐसी क्या बात है ?'

उसने उत्तर दिया, "और इसके कम्पोजीटर के नाते मैं इसे कभी नहीं भूल सकता।"

"वही तो पूछता हूँ कि क्यों ? ऐसी क्या बात है ?"

"क्या बताऊँ ?"—वह सिसकने लगा।

'तो भी कहो।"—मैंने कुछ स्निग्ध होकर अनुरोध किया।

"इसके अक्षर मेरे परिवार के रक्त से छपे हैं।"

मैं यह सुनने के लिये तैयार न था। उसके भरे हुये गले से जो शब्द निकले थे वे सीधे गोली की सनसनाहट के साथ, मेरे अन्तःप्रदेश में जाकर गूँजने लगे। कुछ ऐसी व्यथा और करुणा के बादल सम्पूर्ण वातावरण में छा गये, कि मैं अपने को भी मुश्किल से खोज पाने लगा। उसके तात्पर्य की अभिव्यक्ति का भान न हो सकने पर भी जी में ऐसा कुछ हुआ कि वह मानव-अनुभूति की चरमावस्था में ही सम्भव है। मैंने अपने को दृढ़ता और धैर्य से एकत्रित करके उसके ऊपर आश्वासन के वाक्यों की वर्षा कर दी, पर जैसे प्रखर प्रवाह के ऊपर पुष्प-वृष्टि उसे रोक सकने का साधन नहीं बनती, बल्कि स्वयं ही वह जाती है, उसी तरह मेरी चेष्टा भी उसकी तरल अश्रुवर्षा में न जाने कहाँ चली गई।

थोडी देर में उच्छ्वसित शोक की तरल धारा में पैर मजबूती से जमाकर उसने कहा, "आपने मेरी करुण-कथा सुनने की परवा की, मैं कृतकृत्य हुआ। हाय! पर मैं कहाँ से वह धैर्य लाऊँ, जो छिन्नभिन्न होकर निश्चेष्ट हो गया है, पर नहीं आज उसे स्वस्थ करूँगा और सब बातें कह डालूँगा। आप तो यहाँ नये हैं। बाबू (बडे भारती सम्पादक) से आप कुछ न कहेंगे, और अगर कहें भी तो क्या हर्ज, अब कोई डर भी नहीं।"

"आप काम क्या करते हैं ?"

उत्तर उसके आँसुओं ने दिया। मुझे मालूम होने लगा, जैसे मैंने छेडछेड़ कर उसके मर्म को छू दिया हो, पर मर्म की वह कौन-सी मृदु शिरा थी, इसका पता न लगा। मैं भी चुप हो गया, पर वह जैसे वह उठा था वैसे ही बहता रहा। कुछ और तरल हो गया।

अन्त मे मुझे कहना पड़ा—"क्षमा कीजिएगा। मैंने आपको अनुचित रूप से तंग किया। मुझे यह सब न पूछना था।"

"जी नहीं, आप पूछिये। मैं बताता हूँ। इस तरह कह कह कर मैं अपने को हलका कर लूँगा। मैं बहुत दब रहा हूँ।"

उसने मेरे सामने 'भारती' खोलकर रख दी। मेरी वही कविता सामने थी। मेरा रोम-रोम उत्कट व्यग्रता से उसकी अगली बात सुनने के लिये कान बनकर बैठ गया। उसने गले को साफ करके और आंसुओं को पोंछकर कहा, "यह कविता—" बस, उसका कण्ठ अवरुद्ध हो गया।

मेरा दिल फड़क उठा। उतने ही मे सोच डाला "शायद कविता उसके दिल मे चुभ गई है। मेरा परिश्रम सफल है। उसका एक-एक आँसू मेरी विजय का एक-एक मोती है।"

उसने फिर कहा, 'मैं कुछ पढता नहीं। इस कविता के लिये ही मैं दौड़-दौड़कर यहाँ आता हूँ।"

मैंने सोचा "इतनी पसन्द है इसे। देदूँ 'भारती' का वह अंक लाकर ?" किन्तु फिर मैंने कहा, "इस कविता के लेखक के नाते मैं पूछना चाहता हूँ कि इसमे ऐसी क्या बात है ?'

उसने उत्तर दिया, "और इसके कम्पोजीटर के नाते मैं इसे कभी नहीं भूल सकता।"

"वही तो पूछता हूँ कि क्यों ? ऐसी क्या बात है ?"

"क्या बताऊँ ?"—वह सिसकने लगा।

'तो भी कहो।"—मैंने कुछ स्निग्ध होकर अनुरोध किया।

"इसके अक्षर मेरे परिवार के रक्त से छपे हैं।"

मैं यह सुनने के लिये तैयार न था। उसके भरे हुये गले से जो शब्द निकले थे वे सीधे गोली की सनसनाहट के साथ, मेरे अन्तःप्रदेश मे जाकर गूँजने लगे। कुछ ऐसी व्यथा और करुणा के बादल सम्पूर्ण वातावरण मे छा गये, कि मैं अपने को भी मुश्किल से खोज पाने लगा। उसके तात्पर्य की अभिव्यक्ति का भान न हो सकने पर भी जी मे ऐसा कुछ हुआ कि वह मानव-अनुभूति की चरमावस्था मे ही सम्भव है। मैंने अपने को दृढ़ता और धैर्य से एकत्रित करके उसके ऊपर आश्वासन के वाक्यों की वर्षा कर दी, पर जैसे प्रखर प्रवाह के ऊपर पुष्प-वृष्टि उसे रोक सकने का साधन नहीं बनती, बल्कि स्वयं ही वह जाती है, उसी तरह मेरी चेष्टा भी उसकी तरल अश्रुवर्षा मे न जाने कहाँ चली गई।

थोडी देर मे उच्छ्वसित शोक की तरल धारा मे पैर मजबूती से जमाकर उसने कहा, "आपने मेरी करुण-कथा सुनने की परवा की, मैं कृतकृत्य हुआ। हाय ! पर मैं कहाँ से वह धैर्य लाऊँ, जो छिन्नभिन्न होकर निश्चेष्ट हो गया है, पर नहीं आज उसे स्वस्थ करूँगा और सब बातें कह डालूँगा। आप तो यहाँ नये है। बाबू (बडे भारती सम्पादक) से आप कुछ न कहेंगे, और अगर कहें भी तो क्या हर्ज, अब कोई डर भी नहीं।"

एक और विराम लेकर उसने अपनी कहानी कह डाली। मुझे बतला दिया कि वह ऐसे परिवार मे जन्मा और पला था जहाँ गरीबी पैर पसार कर पड़ जाती है। इसी से पढने-लिखने की सुविधा न पाकर अन्त मे कम्पोजीटरी के गले पडा था। भारती-प्रेस मे ही उसने काम सीखा था और वहीं प्रवीणता भी प्राप्त की थी। १७ रुपये की आय मे दो बच्चे, स्त्री और अपना भरण-पोषण करके वह साहित्य की सेवा तो क्या कर रहा था, हाँ अपने स्वास्थ की बलि ज़रूर दे रहा था। आँखें, जिनसे विश्व के सौन्दर्य को हृदय के भीतर चित्रित करके रंगबिरगे अनुभवों द्वारा प्रतिमा उपार्जित की जा सकती थी, अपने कर्तव्य से परा-मुख होकर कटोरलीन हो रही थीं। कर्म बिना निस्तार नहीं इसी से वह कर्म मे लगा था। तिस पर भी वेतन की मार ने घर भर को बेदम कर डाला था। महीने मे कुछ दिन पहिले से ही दूसरों की ओर ताकने की नौबत आ जाती थी। यों तो भारती प्रेस की और उसके संचालक की उसने तारीफ ही की, पर कहा कि नियमों की पाबन्दी वहाँ हद दरजे की है।

वह दिन साल का अन्तिम दिन था। भारती का अङ्क तैयारी मे था। उसके हाथ मे मेरी कविता थी। वही कविता जिसके कारण मैं आज मैं हूँ। कविता तुरन्त तैयार करके देनी थी। मशीन रुकी हुई थी। कविता के साथ और मैटर की प्रतीक्षा थी, पर उसका चित्त ठिकाने न था। केसों मे हाथ न पडता था। हृदय काँप रहा था। जी घूम रहा था। आज जब वह प्रेस आया था तो बीमार बच्चे को दो दिन का भूखा छोड आया था। अन्न उसके लिए विष था, उसे दूध ही दिया जाना चाहिए था, पर दिल्ली जैसे शहर मे बिना पैसे दूध नहीं मिला करता। गरीबों को उधार भी सब नहीं देते। दुख तो यह था कि घर मे दूध

नहीं बल्कि अन्न का एक दाना भी न था। पिछले तीन दिनों से करीब करीब निराहार चल रहा था। बच्चे की बीमारी में हकीम और वैद्य को भेंट देकर उपहास ही वरदान मे पाये थे। उन्हीं को हृदय से चिपकाकर अपने कर्तव्य का पालन किया जा रहा था।

३१ दिसम्बर था, महीने का अन्तिम दिन। प्रेस पर महीने भर की तनख्वाह चढ़ चुकी थी। किन्तु प्रेस का ऐसा नियम नहीं कि वेतन पहिले दिया जाय। पहली तारीख से पहले कुछ नहीं मिल सकता। २४ घंटे का व्यवधान, बैंक की छुट्टी का या रवि-वार के अतिरिक्त, किसी को उपस्थित करने का अधिकार नहीं है। तभी पहली की जगह दूसरी तारीख होना सम्भव है, पर पहली से भी पहले वेतन मिलना किसी तरह संभव नहीं। उसके लिए और कोई उपाय किया जा सकता है।—यह सब उसे मालूम था. पर बच्चे की तकलीफ ने मन मे यह धारणा पैदा करदी कि यह तो एक अत्यन्त भिन्न दशा है। ऐसे समय मनुष्य नियमों को नहीं देखता, मनुष्यता को देखता है। अवश्य ही जब वह जाकर मालिक के सामने खड़ा हो जायगा और अपनी प्रार्थना उपस्थित करेगा तो सब कुछ छोड़कर वे उसकी सुनेंगे और उसकी वांछा पूरी करेंगे। असंभव को संभव कराने की धारणा लेकर वह प्रेस आ पहुँचा। काम न करके तुरन्त घर लौट आने का आश्वासन सबको देकर वह आया था, पर जब उसने मालिक के सामने निवेदन किया तो उन्होंने अपने को नियम का दास उद्घोषित करके असमर्थता को बीच मे खड़ा कर दिया और उससे कहा, "आज कुछ नहीं हो सकता। सख्त जरूरत हो, तो किसी और से ले लो। कल उसे दे देना।—प्रेस का ऐसा ही नियम है। जाओ काम करो।"

निशब्द, पाषाण-प्रतिमा-सा वह अपने स्थान पर लौट आया। खड़े रह कर यह पूछने का उसका जी नहीं हुआ कि बच्चे के तड़प-तड़प कर भूखों मरने के अतिरिक्त भी सख्त जरूरत कोई होती है क्या? वह अपने स्थान पर जाकर बैठ गया। उसके पैरों के नीचे पृथ्वी नहीं थी और न सिर के ऊपर आसमान। कौन उसे मेरी कविता कम्पोज करने को दे गया और कितनी बार उसका तकाजा हो गया इसका उसे ज्ञान न था। हतबुद्धि, हतचेत और खोया-हुआ-सा वह चुपचाप बैठा था।

उसकी विस्मृत वृत्तियों को सजग करके डिपार्टमेंट के हेड ने आकर उसे समझाया, "काम कर डालो। मैं जाकर मालिक से निवेदन करूँगा—अभी-अभी मैं जाऊँगा।"

घोर निराशा मे आशा की एक किरण को लेकर उसने कब कविता को समाप्त कर डाला यह उसे भी नही मालूम, पर वह हो तो गई। किन्तु कोई लौटकर उसके पास नहीं आया। उस समय एक-एक सैकण्ड एक-एक मौत लेकर आता प्रतीत होता था।

निरीह विनम्रता एक सीमा पर जाकर पाषाण-कठोर हो जाती है। वह दृढ़ता जो इस तरह पैदा होती है, झुकना या बल खाना नहीं जानती। जब सब तरफ से निराश हो गया—एक तिनके का भी अवलम्ब दिखाई नहीं देने लगा तो प्राकृतिक दृढ़ता हिमालय की भाति उसमे प्रादुर्भूत हुई। रक्तिम आखों मे अटल निश्चय भर कर वह निडर भाव से प्रेस-स्वामी से जाकर बोला—"मैं काम करना नहीं चाहता। मेरा हिसाब मुझे दिला दीजिये।"

वे आँखें साधारण नहीं थीं, वे शब्द भी साधारण न थे और वह कण्ठ-स्वर तो एकदम बदला हुआ था। यह देखकर प्रेस-मालिक का चेहरा तमतमा गया। उन्होंने उत्तर दिया, "अच्छी बात! जाओ। हिसाब आज नहीं—कल मिलेगा।"

"कल मिलेगा?"

"हाँ"

"मैं आज लूँगा। आज ही—"

"अच्छा, निकलो यहाँ से।" उन्होंने खड़े होकर एक उँगली दरवाजे की तरफ दिखाते हुए कहा।

"कभी नहीं, पहले मेरा हिसाब—"

"नहीं जायगा?"

"नहीं'

"चपरासी, चपरासी!—इसको निकालो। अगर न माने तो पुलिस मे दे दो। पाजी कहीं का!" कहकर वे निरस्त हो गये।

दो-तीन चपरासियों ने आकर बेरहमी से धक्के देकर उसे निकाल दिया। उस समय उसके हाथों से मुद्रित-हुई मेरी वह कविता शायद मशीन पर थी।

फाटक के बाहर जा पडने पर उसने सोचा, "हाय अब क्या करके वह घर जाय? दुनिया सूनी है। चलती फिरती मानव-मूर्तियो उसके एक भी काम नहीं आ सकतीं। श्रीमानों के आली-शान महल, घोडा-गाडियाँ, मोटरें उसके लिए किसी भाव से आर्द्र नहीं हैं। आज दिल्ली मे, उस प्राचीन इन्द्रप्रस्थ की धर्म

प्राण-भूमि में, उस गरीब के ऊपर दया की दो शीतल बूँदें गिराने वाला कोई नहीं है! उसका बच्चा दो पैसे भर दूध के लिए छटपटा रहा है। घर भर भूखों विलख रहा है! जमुना मैया को दूध-बताशा अर्पित करनेवाले धर्मध्वजी समाज के असंख्य व्यक्तियों मे से कोई इधर भी आँख फेर दे—कलकलमयी जमुनाजी, तुम्हें दूध की इतनी क्या भूख है? तुम्हीं न छटाँक भर मेरे बच्चे को देकर जिला लो। उसे मैं सदा को तुम्हारा दास बना दूँगा!

पर किसी ने उसकी पुकार को सुना नहीं। दुनियां की नजर उस आहत पर न पड़ी। अपने पुरुषार्थ की व्यर्थता और निष्क्रियता को लेकर हृदय को दबाते हुए जब वह घर पहुँचा तो तीन लाशे तीन तरफ़ पड़ी हुई थीं!

शायद बच्चों की असहनीय वेदना न सह सकने के कारण ममतामयी माता उन्हे वेदना-विमुक्त करके अपने आप भी उनके साथ साथ ही प्रयाण कर गयी। एक दिन गृहस्थी को लाकर जैसे अपने पति के ऊपर एक अभिशाप लाई थी, उसी को अपने साथ समेट कर वह उन्हें निर्द्वन्द विचरने के लिए छोड गई!

वह दृश्य देखते ही वह बेतहाशा गिर पडा। ऐसा मालूम पड़ा, जैसे जो चौथा कोना खाली था वह भी पूरा हो गया। हो जाता तो अच्छा था। चारों शव साथ-साथ निकलते। पास-पास ही चितारूढ़ होकर अन्तिम सामीप्य और प्यार का अनुभव करते हुए दुनियां से जाते। पर वैसा न हुआ। संसार की कटुता को अपने सिर पर सहन करने के लिए वह जीवित रहा। बाकी तीन शव ही स्वयंसेवकों की सहायता से निकले और एक ही

चिता पर रक्खे गये, पर हाय ! तीनों मे से एक के ऊपर भी पूरा वस्त्र न था।

उन्हे जलाकर वह जैसे आप जल गया था। आत्मा के समस्त रस की चिता मे आहुति देकर वह निष्प्राण घर मे लौट आया था।

उसके बाद ही से लोगों ने समझा कि उसे उन्माद हो गया है। अक्सर वह बन्द ही रक्खा जाता है। कुछ शान्त होने पर जब छूटता है तो मेरी कविता देखने के लिए दौड आता है। वह कविता उस दिन की स्मृति है। उसे देखते ही उसके विकृत मस्तिष्क के आगे तमाम परिस्थिति सजीव हो जाती है।

यह सब सुनकर मुझे लगा कि मेरे अभ्युदय का राज-प्रासाद तो गरीबों की आहों पर खडा हुआ है, पर यह भाव बहुत देर तक न रहा। जब मैंने 'भारती' का वह अंक उसे देकर कहा, "तुम इसे ले सकते हो।" और वह लेकर चला गया, तो थोड़ी देर बाद उस दृश्य का सामञ्जस्य अपने जीवन से स्थापित करने की जरूरत न रही, पर एक दम तो उसे कभी भी नहीं भूल सकता। बल्कि जब कभी अपनी लेखनी की प्रशंसा सुनता हूँ तो मुझे लगने लगता है कि मेरी तमाम रचनाएँ गरीबी के रक्त से छपी हैं।



शराफत

आबकारी की दूकानों का नीलाम हो रहा था। उसी की बोली मे बिहारीलाल कलवार और ठेकेदार कल्लन खॉ की बढ़ा-बढ़ी होगई। दोनो ही पानीदार आदमी थे। पीछे नहीं हटे। बारह-बारह हज़ार की दूकाने तेइस-तेइस हज़ार तक पहुँच गई। अन्तिम बोली कल्लनखॉ ने दो हज़ार बढ़ाकर बोल दी और मूॅछों पर ताव देकर एक ओर खड़ा हो गया।

बिहारीलाल पानीदार था ज़रूर पर बनिये का बच्चा था। ऑख मारकर अपने एक साथी से बोला—मर जायॅगे बेटा। बीबी का पानदान बेचते फिरेंगे।

साथी ने हँसकर कहा— तब दौड़े आवेगे अपने ही यहॉ, अभी तो जैसे करोड़पती के नाती होगये है।

बिहारीलाल ने गम्भीरता से कहा—हूँ और क्या ?

थोड़ी देर सन्नाटा छाया रहा। सब की आखे बिहारीलाल के होठों की ओर लगी थीं; लेकिन वह ऐसी चुप्पी मार गया, कि बस।

आबकारी के इन्सपेक्टर ने कल्लनखॉ की ओर देखा। कल्लन खॉ उनकी ओर खिसक गया और आवाज़ ज़रा ऊॅची करके ललकारने के स्वर मे बोला—अब किसी मे दम नहीं मालूम होती।

इन्सपेक्टर ने बिहारीलाल की ओर देखा, उसके ऊपर उनकी उस दृष्टि का कुछ भी असर न हुआ।

दूकाने कल्लनखाँ के नाम होगई। इसी जगह से दोनों की लागडाट हो गई।

[२]

बिहारीलाल और कल्लनखाँ दोनों ही पैसे वाले गिने जाते हैं। दोनों ही का कानपुर नगर मे अच्छा दबदबा है। अनेकों लठैत गुण्डे दोनों के सहायक हैं। उनमे भी बिहारीलाल का नम्बर हर हालत मे ऊंचा है। उसके भाई बनवारीलाल वकील हैं। वे फौजदारी के मामलों मे बडे प्रसिद्ध हैं। उनकी सहायता का भाई को बडा भरोसा है।

कल्लनखाँ एक भूतपूर्व म्युनिसिपल कमिश्नर की औलाद है, उसकी माँ गरीब खानदान की बेवा थी। उसे म्युनिसिपल कमिश्नर साहब ने अपने हरम मे डाल लिया था। कल्लनखाँ शुरू से बडा हेकड और अकड़बाज़ है। उसकी लाल लाल आँखें और गठा हुआ शरीर उसके तेज स्वभाव को फौरन ही प्रगट कर देते हैं। वह अपनी शान पर मर मिटनेवाला शख्श है। अब्बाजान की बहुत बडी जायदाद का मालिक हुआ था पर अपने स्वभाव के कारण बहुत कुछ खो बैठा।

एक बार राजभक्ति की धुन सवार हुई थी। तब बहुत से अफसरों को दावतें दी थीं। यू० पी० के गवर्नर को भी अपने घर मे भोज देने का सौभाग्य उसे प्राप्त हो चुका है।

कुछ दिन बाद राजभक्ति से जी भर गया तब ब्याह की सूझी। बहुत जगह तलाश की पर मन की सुन्दरी न मिली! बहुत-सा रुपया बरबाद हो गया। अन्त मे किला फतह हो ही गया। लखनऊ मे एक बेवा मुसम्मात की एक ख़ूबसूरत लड़की निगाह पर चढ गई। निकाह होगया। बीबी मय सास के घर मे ले आया।

कुछ दिन घुड़दौड़ का शौक भी बुरी तरह से पीछे पड़ा और सच पूछो तो उसी ने कल्लन खाँ के हाथ पैर तोड दिये। तमाम जायदाद रेहन हो गई। अभी हाथी तो खडा था, पर उसमे हड्डियो के पञ्जर के सिवा और कुछ न था।

इसी हाथ की तंगी ने विवश किया था कि वह किसी रोजगार मे लगे। पढ़ा-लिखा था नहीं, करता तो क्या? पुराने अफसरों से कुछ भरोसा था। बहुतेरी दावते खिलाई थीं। सोचा था, आज उनका कुछ बदला मिलेगा पर फकीरों के पास सिवा दुआ के और रक्खा क्या? नीलाम मे बारह बारह हज़ार की दूकानें पचीस पचीस हजार मे पड़ीं। डिप्टी साहब ने यही इनायत की, और बिहारीलाल जैसा एक दुश्मन तैयार हो गया सो अलग। लेकिन कल्लनखाँ क्या डरने वाला आदमी था?

[३]

बिहारीलाल को अपनी हार का बडा खार था, लेकिन सन्तोष यही था कि कल्लनखाँ को विजय बडी मँहगी पड़ी थी। एक बनिये का दिल समझाने के लिये यह सामान काफी था।

उधर कल्लन खाँ ने बडी मुस्तैदी से अपना काम शुरू किया। दूर दूर, जिले के अन्दर की दूकानों का इन्तजाम करने के लिये एक बढ़िया शाहजहाँपुरी रबर टायर इक्का खरीदा। कई सौ रुपये का एक दमदार घोडा लिया। बाप के वक्त की पुरानी टमटम से काम चल सकना सम्भव न था। उसकी ठेकेदारी का ठाठ निराला ही था। दो दो तीन तीन किराये के इक्कों पर लट्ठबन्द जवान उसके साथ चलते थे। कभी डिप्टी साहब के मकान पर, कभी इन्सपेक्टर साहब की हाजिरी मे उसे जाना जरूरी

था। अपनी तमाम दूकानों का एक-एक चक्कर लगाना तथा उनका इन्तजाम इत्मीनान के आदमियों के सुपुर्द करना भी उतना ही महत्व रखता था। कल्लनखाँ को आराम करना हराम होगया। रात दिन दौड़ धूप करके वह अपने उद्देश्य मे लग गया।

कल्लनखाँ अहलदिल जरूर था पर वेवकूफ नहीं। उसने देखा, उसके पास होशियार और इत्मीनान के आदमी कम है— वह पशोपेश मे पड़ा। आखिर उसे एक तरकीव सूझी। उसे ख्याल आया—विहारीलाल पुराना ठेकेदार है। उसके बँधे हुए आदमी हैं। इस साल ठेके न मिलने से वे छूट गये होंगे।

विहारीलाल के तमाम आदमियों मे श्यामलाल सबसे प्रधान चतुर और दवङ्ग आदमी था। कल्लनखाँ की उससे पुरानी मुलाकात थी। उसी के द्वारा अपना काम निकालना उसने सोचा।

अचानक मौका भी विना वुलाये मिल गया। कल्लनखाँ ए० वी० रोड से अपने इक्के मे जा रहा था। पीछे से श्यामलाल ने किराये का इक्का समझकर इक्केवाले को पुकारा। कल्लन ने झट इक्का रुकवा दिया और वड़े आदर से कहा—आओ चचा, आ जाओ। यह तो आपही का इक्का है।

श्यामलाल घाघ था। भाँप गया, कहा—मै समझा था किराये का इक्का है।—भतीजे क्या दूकान जा रहे हो? अच्छा जाओ, मुझे तो इधर वादशाही नाका, कलक्टरगंज होकर अनवरगंज के परली तरफ़ तक जाना है।

कल्लन—चले जाना, अभी तो आजाइये। आप से कुछ मशविरा करना है। मैं तो आपके मकान पर आनेवाला था।

श्यामलाल—भतीजे, मुझे तुम्हारे काम से कब इनकार है। मैं पहुँच जाता। कहला भेजने की देर थी। लेकिन अभी तो—

कल्लन—नहीं चाचा, तुम्हे मेरी क़सम है ऊपर आ जाओ। चलो तुम्हें जहाँ जाना है पहुँचा देता हूँ।—(कोचवान से इक्का घुमा ले—

श्यामलाल मजबूर होगया। इक्के पर चढ़ गया। कल्लन ने थोड़ी दूर चलकर एक दूकान पर इक्का रुकवाया। चार पैसे के पान लिये। दो श्यामलाल ने खा लिये, बाक़ी दो अपने मुँह में दबाकर वह फिर इक्के पर बैठ गया और पीक थूककर बोला—चचा, सौ बात की बात तो यह है कि मेरी इज्ज़त आपके हाथ में है।

श्यामलाल—कहो भी कुछ।

कल्लन—कहूँ क्या? आप से छिपा क्या है। मैंने तो कभी ठेके का काम किया नहीं।

श्यामलाल—तो?

कल्लन—बताईये कैसे इसका इन्तज़ाम करूं? सच तो यह है कि मुझे आदमी चाहिये। चचा, आप मुझे अपने अपने इत्मीनान के आदमी दीजिये। आप ही मेरी इज्ज़त बचा सकते हैं।

श्यामलाल—मुझे कब इन्कार है। रही आदमियों की बात उनके लिये भी कोशिश करूंगा।

कल्लन—कोशिश नहीं, आदमी देने होंगे। नहीं तो मै बरबाद हो जाऊँगा। मुझ से वादा कीजिए।

श्यामलाल—हाँ दूंगा।

[४]

इन घटनाओं के बाद अगर कोई बिहारीलाल से आकर कहता कि श्यामलाल कल्लनखाँ के साथ इक्के पर जारहे थे तो उन्हें विश्वास न होता; लेकिन बदकिस्मती के अलावा और क्या कहें, अपनी आँखों से उन्होंने दोनों को साथ-साथ इक्के पर जाते देखा। न कल्लन और न श्यामलाल को इसकी खबर हुई। वे दोनों घुलघुलकर बातें करने मे मशगूल थे।

बिहारीलाल घर आये तो क्रोध, क्षोभ, विपन्नता और पराजय की आत्मग्लानि से उनका जी भारी था। अब तक नहीं, आज उन्हे अपनी हार की परिपूर्णता का तीखा भान हुआ। कभी उन्हे श्यामलाल की नमकहरामी की बात याद आती थी कभी कल्लन की दुरभिसन्धि की।

उन्हे जरा भी अविश्वास नहीं था कि वे दोनो उन्हीं के सर्वनाश की योजना तैयार कर रहे थे।

श्यामलाल के सम्पर्क को वे जितना ही पास रखकर गौर करने लगे, उतना हीं उन्हें वह छल-छद्ममय प्रतीत होने लगा। उसकी हर एक पिछली बात जिसे वे याद कर सके व्यंगपूर्ण, श्लेष तथा वक्रोक्तियों से भरी हुई मालूम पड़ने लगी। उसके प्रत्येक ईमानदारी के काम मे भी आज उन्हें बेईमानी और दगाबाज़ी का विश्वास होने लगा।

वात भी सच थी। कल्लन ने न केवल उनके रोजगार को मिट्टी मे मिलाया था बल्कि उनके आश्रित वीसों अन्य परिवारों की रोजी मार दी थी। यही क्यों, श्यामलाल भी तो उनमे से पृथक नहीं था। फिर भी श्यामलाल उसी के साथ एक होकर मन्त्रणा कर रहा था।

ठेके नहीं मिले थे, इसलिये वहुत से आदमियो को छुडाना पडेगा। यह सोचकर भी विहारीलाल कम दुःखी न थे पर श्यामलाल के लिये तो वैसी भी कोई सम्भावना न थी। वह तो घर का सा आदमी था। दूसरे सब आदमियो को भी अटकाए रहें, ऐसे किसी काम की टोह मे वे स्वय थे। श्यामलाल को सब वातों का पता होते हुए भी वह कल्लन के साथ मिल गया, यह वात उनके जी को विशेषरूप से कचोटती थी।

(५)

विहारीलाल चिन्तित-कुपित अपने शयनगृह मे पडे थे। सोच रहे थे—श्यामलाल जैसे आदमी का मुँह नहीं देखना चाहिये और कल्लन से ऐसा वदला लिया जाय कि ता-उम्र उसे याद रहे। मैं अपने वाप से पैदा नहीं, जो उसकी हेकड़ी धूल मे न मिला दूं।

नौकर ने आकर खबर दी—मुनीमजी आए है।

विहारीलाल क्रोध से वडवडाये—दगावाज, धोखेवाज—फिर कहा—अच्छा रामनाथ को वुला लो।

रामनाथ के आने तक उन्होंने एक परचे मे लिखा—कई कारणों से हमने अपना काम समेट लेना तय कर लिया है। आप भी जल्दी से जल्दी अपना काम रामनाथ को समझा

दीजिए। हमे आपको जवाब देते हुए खेद है, पर क्या किया जाय ? मैं बहुत जरूरी कामों मे लगा हूँ। मिलने की फुर्सत नहीं है।

श्यामलाल ने परचा पढ़ा तो आकाश से पृथ्वी पर आ गिरे। उनकी ऊपर की सांस ऊपर और नीचे की नीचे रह गई। कदाचित इस आकस्मिक वज्रप्रहार से एक वार आहत होकर वे कुछ देर के लिये किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होगये। मन ही मन कहा—यह सब क्या है—धन का घमण्ड ? इतने एहसानों को धनोन्मत्त कुत्तों के सिवा और कौन भूल सकता है। इस नीच को इतना साहस है ! हम ब्राह्मणों का इस तरह अपमान करे। चाणक्य अगर नन्दवश का नाश कर सकता है तो श्यामलाल क्या इस घमण्डी वैश्य का मूलोच्छेद नहीं कर सकता।

इसी समय उन्हें कल्लन के दिखाये हुये सब्जबाग़ की याद आगई। पारा और ऊँचा चढ़ गया। सोचने लगे—बस, अब इसके विनाश मे देर नहीं है।

फिर बडे आवेश के साथ रामनाथ से कहा—वे पड़ी हैं वहियॉ और ये लो कुञ्जियों ! सॅभालो अपना काम। मुझे भी ठहरने की फुर्सत नहीं है। कह देना लाला जी से मेरा हिसाब घर पर भिजवा दे।

श्यामलाल तमककर कोठी से वाहर निकल गये और सीधे कल्लनखो के घर की ओर चले।

[६]

श्यामलाल को पाकर कल्लन की ताकत वढ़ गई। उसने श्यामलाल के द्वारा विहारीलाल के आदमियों को तोड़ने की

कोशिश की। बिहारीलाल को पता चला। वे स्वयं आदमियों को जवाब देनेवाले थे, पर श्यामलाल के इस प्रयत्न को उन्होंने ललकार समझा। तुरन्त उसी दिन निकल पड़े। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की इमारतों के ठेके, सड़क के ठेके और स्टेशन की मालगोदाम का ठेका ख़रीद लिया। अपने सब आदमियों को सूचना भेज दी कोई घबड़ाये नहीं। एक महीने में ठेकों का काम खतम होने के बाद भी किसी को जवाब न दिया जायगा।

कल्लनखाँ ने दूसरी चाल चली। जिसे बिहारीलाल के यहाँ पच्चीस रुपया मिलते थे उसे उसने तीस देने का ऐलान कर दिया। इसका बहुत असर नहीं हुआ। दो-चार दस चलतेपुर्जे आदमियों के सिवा किसी ने अपनी बँधी नौकरी छोड़ना स्वीकार न किया।

इस तरह कल्लन और बिहारीलाल की दुश्मनी दिन-दिन उग्र रूप धारण करने लगी। अब दोनों ही जहाँ कहीं निकलते, तो दो-चार लठैतों के साथ, अकेले नहीं। दोनों के यहाँ की एक-एक बात के लिये दोनों तरफ़ से जासूस मुक़र्रर होगये।

एक दिन बिहारीलाल ने सुना—कल्लन फौजदारी के लिये तैयार है। उसके यहाँ आज इसी विषय पर विचार करने के लिये उसके आदमी इकट्ठे होंगे।

पैसे के मामले में बिहारीलाल पक्का बनियाँ था जरूर, पर दिलेरी के कामों में किसी क़दर कम न था। आदमियों की भी उसके यहाँ कोई कमी न थी। बिहारीलाल ने अपने आदमियों को बुलाकर साफ शब्दों में सुना दिया—कहीं दबने की ज़रूरत नहीं, जहाँ मौका आ जाय, वहीं डट जाओ। ऐसा मारो कि फिर

पानी न मांगे—जितना होगा रुपया मैं खर्च करूँगा। वकील साहब की अक्ल पर विश्वास रक्खो। वे किसी को फाँसी न चढ़ने देंगे।

दोनों ओर से तनातनी बहुत बढ़ गई।

[७]

शहर से बाहर गुटैया स्टेशन की एक सडक पर बिहारीलाल के आदमियों का इक्का कल्लनखाँ के आदमियों के इक्के से भिड़ गया। इक्के जोरों से दौड रहे थे। घटना अचानक ही हो गई। बिहारीलाल के इक्के की धुरी टूट गई। दूसरी तरफ़ के घोडे को खासी चोट आई। इसका दोनों तरफ़ के आदमियों मे से किसी को सोच नहीं हुआ।

कल्लनखाँ के आदमियों ने अट्टहास करके इक्का दौड़ाते हुए कहा—वनियें के पैसे मे दम कहाँ? चूहे की खाल मढ़कर शेर से वाज़ी लेने का नतीजा और क्या होगा।

बिहारीलाल के आदमी लट्ठ लेकर कूद पड़े और दौडकर फूटे हुए घोड़े को और भी फोड कर बेकाम कर दिया और कहा—वनियें की दम देखना हो तो उतर कर सामने मैदान मे आओ।—इतना कहते कहते एक दिलेर ने दो-चार लाठी इक्के की छतरी पर भी धमक दीं पर किसी का सिर नहीं फूटा।

इतने मे राहगीरों ने जमा होकर बीच-बिचाव कर दिया। उस दिन यहीं तक रह गया। दोनों ओर से पुलिस मे लम्बी लम्बी रिपोर्टें लिखाई गईं।

दूसरी मुठभेड करारी हुई। नहर के किनारे खूब लाठी चली। कई आदमियों के सिर रँग गये। बिहारीलाल की तरफ़ से

कहा जाता है कि उनका एक आदमी नहर मे डुबो दिया गया था। कल्लन की तरफ का बयान है कि उस आदमी को शहर से बाहर कहीं भेज दिया गया है। अभी तक न तो उसकी लाश बरामद हुई थी और न उसके जीते होने का पता चला था।

बड़े जोर का मुक़दमा दायर है। अभी तक कुछ फैसला नहीं हो सका है।

विहारीलाल और कल्लन की इस लागडॉट ने दो दल पैदा कर दिये हैं। एक मे हिन्दुओं का जमघट है दूसरे में मुसलमानों का। व्यक्तियों की दुश्मनी धीरे धीरे जातियों के वैर का रूप धारण करने लगी।

[८]

जहाँ दोनों तरफ़ लड़ाई मोल लेने के चाव विद्यमान रहते है, वहाँ कारणो को खोजने की जरूरत नहीं पड़ती, मिले और तडातड बजने लगी।

शाम को बूढ़े श्यामलाल मूलगञ्ज की एक गली के नुक्कड पर पूजा के लिये हार ख़रीद रहे थे। उनके साथ दो शरीर रक्षक मुसलमान भी थे पर जब तक मुनीम जी हारों का मोल करें, वे तमोली की दूकान पर बीडी पी लेने के लिये बढ़ गये।

इतने मे एक आदमी ने पीछे से आकर हार की दूनी कीमत लगा दी। मुनीम जी सौदा क़रीब करीब पटा चुके थे, तेज़ होकर बोले—ये हार बिक चुके हैं, देखते नहीं हो ?

उस आदमी ने भी तेज होकर कहा—तो सीधे क्यों नहीं बोलते, ऐंठते क्यों हो ?

श्यामलाल भी अक्खड़ ब्राह्मण थे, चिल्लाकर बोले—बातें कैसी करता है ? ऐंठ क्या किसी ससुरे के हाथ वेची है।

यह कहना था कि इधर उधर से तीन चार आदमी श्यामलाल को पास की गली मे खींच ले गये और लगे तडातड़ प्रहार करने। श्यामलाल के साथी दौड़ आये, पर उनके पहुँचने के पहले ही बूढे श्यामलाल का काम तमाम हो चुका था। घातक भी वहाॅ से नौ-दो हो चुके थे।

जरा सी देर मे कल्लनखाॅ का गिरोह इकट्ठा हो गया और चारों तरफ यह खबर फैल गई कि हिन्दू मुसलमानों का दङ्गा हो गया है। काफिरों ने एक मुस्लिम को जान से मार डाला है।

देखते ही देखते मुसलमानों का हुजूम हो गया। जहाॅ जो हिन्दू मिला वहीं उसका पेट फाड डाला गया। चारों तरफ चल्लम, भाले, चाकू और छुरी नजर आने लगे। मन्दिर फूॅके जाने लगे, मकान जलाये जाने लगे और दूकानें तहस नहस की जाने लगीं। स्त्री और बच्चों की दुर्दशा हो गई। अत्याचार नगा होकर तमाम नगर मे तांडव नृत्य करने लगा। जो हिन्दू और मुसलमानों मे जरा भी भेदभाव नहीं रखते थे, वे हिन्दू हिन्दू होने के कारण और मुसलमान-मुसलमान होने के कारण मारे गये।

वृद्ध श्यामलाल का जनाजा वडे समारोह और जोश के साथ निकाला गया। उसे शहीद का अमर पद प्रदान किया

गया। उसके एक-एक रक्तविन्दु के लिये कितने हिन्दू मरे इसका अन्दाजा आज तक नहीं लग सका है।

[६]

कल्लन की चाल अच्छी तरह सफल हो गई। न केवल काफिरों का संहार होकर धर्म का काम पूरा हुआ बल्कि जानी दुश्मन विहारीलाल की आशाओ का केन्द्र उसका भाई वनवारीलाल वकील भी खुदागज पहुँचा दिया गया। श्यामलाल ने मरते मरते अपना काम पूरा कर दिखाया।

विहारीलाल की वडी भारी कोठी जलाकर भस्म कर दी गई। यह सब विहारीलाल ने खून के आँसू गिराते हुए सुना। उनके मकान पर भी ज़ोर का हमला हुआ, पर सफलता न मिल सकी। विहारीलाल ने भी जवरदस्त इन्तजाम कर रक्खा था। वकील साहव धोखे मे कचहरी से आते हुए गुण्डों के पंजों मे पड गये थे।

अभी तक विहारीलाल को अपने भाई के निधन का हाल मालूम नहीं था। उनके आने मे देर होने पर उसने एक सौ सशस्त्र जवान उनकी खोज मे भेजे।

रात को डेढ वजे वे लोग लौटे, बनवारीलाल के साथ तो नहीं, पर कल्लनखाँ की सुन्दरी वीवी और तीन महीने की लड़की के साथ। सबने आकर कहा—लीजिए वकील साहव का वदला इनसे चुका लीजिए। वकील साहव इस ससार मे नहीं हैं। वे वीरता के साथ अपने पिस्तौल का उपयोग करके मरे हैं। यदि आपकी कोठी जली है, तो कल्लनखाँ का मकान

भी जमीन से मिला दिया गया है। जान का बदला
चाहें तो एक के बदले दो लीजिए। इनकी इज्जत, इन
आपके अधिकार में है।

विहारीलाल भाई के मृत्युसंवाद से अर्धमृत हो
किन्तु अपने आदमियों की बातों से जैसे सजग होकर
और खूब ऊंची आवाज में बोले—अरे कायरो ! तुमने वि
को क्या समझ रक्खा है? हट जाओ मेरे सामने
अबला को खून की प्यास बुझाने के लिए पकड़ ल
यह नहीं जानते, विहारीलाल मर्द है। मर्द की लड़ाई
होती है, स्त्री-बच्चों से नहीं।—फिर उस औरत की
करके कहा—आप मेरी माँ बहन के बराबर हैं ! आपके
से मेरी लड़ाई है, आपसे नहीं। उन्होंने मेरे भाई को
तो मैं आप पर अत्याचार करूं; यह इन्सानियत नहीं
आदमियों ने बडी गलती की है, जिसके लिये मैं आ
आपके खाविंद दोनों से माफी चाहता हूँ। आप च
अभी आपको घर भिजवा दूँ या आप चाहें तो रात के
घंटे हमारी औरतों के साथ बे खौफ़ रह सकती हैं।

कल्लनखाँ की औरत के मुँह से कोई आवाज नहीं
वह विहारीलाल के पैरों की तरफ सिर झुका कर
उसकी आँखों से आँसुओं की धारा ने गिरकर नीचे के
गीला कर दिया।

[१०]

कल्लनखाँ की औरत जब उसके घर पर वापस

गया। उसके एक-एक रक्तविन्दु के लिये कितने हिन्दू मरे इसका अन्दाजा आज तक नहीं लग सका है।

[६]

कल्लन की चाल अच्छी तरह सफल हो गई। न केवल काफिरों का संहार होकर धर्म का काम पूरा हुआ वल्कि जानी दुश्मन विहारीलाल की आशाओं का केन्द्र उसका भाई वनवारीलाल वकील भी खुदागज पहुँचा दिया गया। श्यामलाल ने मरते मरते अपना काम पूरा कर दिखाया।

विहारीलाल की वड़ी भारी कोठी जलाकर भस्म कर दी गई। यह सव विहारीलाल ने खून के आँसू गिराते हुए सुना। उनके मकान पर भी ज़ोर का हमला हुआ, पर सफलता न मिल सकी। विहारीलाल ने भी जवरदस्त इन्तज़ाम कर रक्खा था। वकील साहव धोखे में कचहरी से आते हुए गुण्डों के पंजों मे पड़ गये थे।

अभी तक विहारीलाल को अपने भाई के निधन का हाल मालूम नहीं था। उनके आने मे देर होने पर उसने एक सौ सशस्त्र जवान उनकी खोज मे भेजे।

रात को डेढ़ वजे वे लोग लौटे, वनवारीलाल के साथ तो नहीं, पर कल्लनखाँ की सुन्दरी वीवी और तीन महीने की लड़की के साथ। सवने आकर कहा—लीजिए वकील साहव का वदला इनसे चुका लीजिए। वकील साहव इस ससार मे नहीं हैं। वे वीरता के साथ अपने पिस्तौल का उपयोग करके मरे हैं। यदि आपकी कोठी जली है, तो कल्लनखाँ का मकान

भी ज़मीन से मिला दिया गया है। जान का बदला जान से चाहे तो एक के बदले दो लीजिए। इनकी इज्जत, इनकी जान आपके अधिकार मे है।

बिहारीलाल भाई के मृत्युसंवाद से अर्धमृत हो गए थे; किन्तु अपने आदमियों की बातों से जैसे सजग होकर उठ बैठे, और खूब ऊंची आवाज मे बोले—अरे कायरो! तुमने बिहारीलाल को क्या समझ रक्खा है? हट जाओ मेरे सामने से, एक अबला को खून की प्यास बुझाने के लिए पकड़ लाये हो। यह नहीं जानते, बिहारीलाल मर्द है। मर्द को लड़ाई मर्दों से होती है, स्त्री-बच्चों से नहीं।—फिर उस औरत की ओर मुँह करके कहा—आप मेरी माँ बहन के बराबर है! आपके खाविंद से मेरी लड़ाई है, आपसे नहीं। उन्होंने मेरे भाई को मारा है तो मैं आप पर अत्याचार करूं, यह इन्सानियत नहीं है। मेरे आदमियों ने बड़ी गलती की है, जिसके लिये मैं आप और आपके खाविंद दोनों से माफ़ी चाहता हूँ। आप कहे तो मैं अभी आपको घर भिजवा दूँ या आप चाहें तो रात के दो तीन घंटे हमारी औरतों के साथ बे खौफ रह सकती हैं।

कल्लनखाँ की औरत के मुँह से कोई आवाज नहीं निकली, वह बिहारीलाल के पैरों की तरफ सिर झुका कर बैठ गई। उसकी आँखों से आँसुओं की धारा ने गिरकर नीचे के फर्श को गीला कर दिया।

[१०]

कल्लनखाँ की औरत जब उसके घर पर वापस सकुशल पहुँची तब तक वह उसकी मृत आत्मा के लिये कई बार खुदा-

वन्द से दुआ कर चुका था। उसकी औरत उसे दुनियाँ में सबसे प्यारी थी, और उससे भी प्यारी थी छोटी बच्ची। दोनों को एक बार फिर सुरक्षित पाकर उसे कितना आनन्द हुआ यह उसके सिवा और कोई जान नहीं सकता।

थोड़ी देर के बाद ही कई आदमियों ने देखा कि कल्लनखाँ नंगे सिर, खाली हाथ, अकेला बिहारीलाल की कोठी में पहुँचा। बिहारीलाल भाई के दुःख में पडे बड़ी मुश्किल से अभी बाहर निकलकर दातून कर रहे थे। कल्लनखाँ सीधा उनके सामने पहुँचा और आश्चर्यान्वित करते हुये बोला—आपकी शराफत के लिये मैं आपका दिल से शुक्रिया अदा करता हूँ। अपनी रज़ालत के लिए मुझे निहायत अफसोस है। मैं हाजिर हूँ, वकील साहब का बदला यह सिर धड़ से जुदा करके ले लीजिये। मैं निहायत खुश हूँ।

बिहारीलाल सिर उठाकर केवल उसकी ओर स्थिर दृष्टि से देखते रह गये।



पुनर्जन्म

उस समय शारदा सचमुच बडे संकट मे पड़ गई, जब उसने कोठे पर से देखा कि उर्मी फाटक के वाहर वीच सड़क मे पहुँच गई है, और उधर पान की पीक, धूल और काजल से सना हुआ एक पागल, हाथ मे एक वड़ा सा पत्थर लिये दौडा चला आ रहा है। राहगीर उसके डर से इधर-उधर गली-कूचों मे छिप रहे हैं।

कोई नौकर भी दिखाई नहीं दिया। अगर वह खुद नीचे जाती तो उतनी देर मे न जाने क्या हो जाता! पागल आकर उर्मी के सिर पर पत्थर दे मारता। अगर वहीं से हल्ला मचाती तो जवान नहीं खुलती थी। डर के मारे आवाज वन्द होगई थी।

वह धन-जन से सम्पन्न, वड़े परिवार की मालकिन असहाय की तरह कठपुतली होकर खड़ी रह गई। पागल उसी के सिर पर आगया। तव शारदा ने टूटे-फूटे अस्पष्ट शव्दों मे, "हाय राम! मेरी उर्मी · · " कहकर किवाड पकड लिया—क्योंकि शरीर के आधे प्राण निकल चुके थे।

पागल उर्मी के पास आकर ठहर गया। पत्थर को हवा मे घुमाता हुआ वोला—"मेरी नौनिहाल वच्ची! तू उस जन्म की मेरी मो है—मो।"

उर्मी किलककर दो कदम और उसकी तरफ वढ गई।

पागल ने हँसकर कहा, "हों तूने मुझे पहचान लिया! हँसाती है, अच्छा हँस मैं तो पागल होगया हूँ · · ।"

उमी उसके बिलकुल पास पहुँच गई। वह खूब हँस रही थी।

पागल कुछ शान्त हो चला था। बोला, "तू अब भी मुझे प्यार करती है, जब सब लोग मेरी छाया से भागते हैं। माँ! हा हा हा·····!"

बस, वह घुटनों के बल बैठ गया। उमी की दोनों हथेलियों को बारी-बारी से चूमा, पैरों को छुआ और पत्थर घुमाता हुआ भाग गया।

शारदा ने उमी को पाया तो छाती से लगाकर बड़ी देर तक रोती रही। उसे मालूम पड़ा जैसे बच्ची का आज नया जन्म हुआ। घर में बड़ा भारी उत्सव किया गया। गरीबों को कपड़े और भोजन बाँटा गया।

नौकरों को सतर्क कर दिया गया। उमी की देख-रेख बढ़ गई। मकान की चहारदीवारी को पार करके जाना उसके लिये असम्भव होगया। आँगन और गोद—यही उसके लिये रह गये। बाहर जाती तो गाड़ी में। साथ धाय, माँ, बाबू और एक दो नौकर जरूर रहते। बेचारी उमी!

उमी बड़ी प्यारी थी, माँ-बाप दोनों ही की। चौदहवीं में ब्याह होकर सोलहवीं में शारदा के जो लड़का हुआ था, वह एक हफ्ते भी दुनियाँ का प्रकाश न देख सका था। उसके बाद आठ साल तक कुछ नहीं हुआ। पचीसवीं साल में उमी ने दर्शन दिये थे—सचमुच उमी बड़े प्यार की चीज थी, न कि पागल के पत्थर का लक्ष्य होने योग्य। इसी से इतनी सतर्कता आवश्यक थी।

उमी—प्यारी उमी, की जान बच गई। शारदा के लिये क्या यह लापरवाही की बात थी ?

तब उमी सिर्फ दो साल तीन महीने की थी। उसकी मीठी तोतली बोली घर में हर्ष का झरना थी। शारदा और रमानाथ (माँ-बाप) सरल शैशव की आनन्दमयी क्रीड़ा में किस सुख को नहीं पाते थे ?

एक रात को उमी पलॅग पर सो रही थी। शारदा और रमानाथ बैठे थे। गृहस्थी की चर्चा छिडी थी। धीरे-धीरे उमी की बात आगई। कैसे बोलती है, कैसे दूसरों की नकल करती है, कैसे हर्ष और विस्मय के भाव जाहिर करती है!—यही सब चल रहा था। अक्समात् शारदा को उस दिन का दृश्य याद आगया। उसे मालूम पडा मानों वही पागल बड़ा सा पत्थर लिये दौड़ा चला आरहा है! इस बार उमी को देखते ही वह उसके ऊपर टूट पडा। शारदा ने उस दिन जो कुछ सोचा था, आज उसने वही कर डाला। उमी के सिर पर पत्थर दे मारा। बेचारी खून से लाल होगई।

अकस्मात् शारदा को भयभीत देखकर रमानाथ ने कहा, "यह क्या, जी तो ठीक है ?"

शारदा ने सँभलकर पहले उमी के खुले बालों पर हाथ फेरा फिर हलकी-सी साँस लेकर बोली, "मैं यही सोच रही थी कि उस दिन कहीं पागल जरा सनक जाता, तो—? कैसा भयंकर उत्पात हो जाता! उमी के बिना मैं कैसे रहती ?—मैं तो पागल हो जाती।"

रमानाथ ने पुरुषोचित लापरवाही से कहा, "तुम पागल हो जातीं तो तुम भी किसी घर की उमी पर पत्थर दे मारती !

"हाय-हाय ! मेरा तो जी काँप उठता है।

"तुम तो वैसे ही पगली हो ! परमात्मा को यह कब मंजूर होगा कि वह उमी को इस तरह छीन ले। उमी कितने लोगों का खिलौना है ?"

"तुम होते तब कहते—राक्षस का सा भयंकर उसका रूप ! अभी तक आँखों के सामने नाचता है।"

"खैर, अब उससे क्या ?"

"मुझे तो जब याद आ जाती है, तो मालूम पडता है कि वह पत्थर लिए उमी के सिर पर खडा है।"

"उँहुँ—कहकर रमोनाथ लेट रहे। शायद थोडी देर मे सो भी गये, पर शारदा को नींद कहाँ ?—फिर वही विचार। सोचने लगी—वह पागल क्यों होगया ? क्या उसका भी तो कोई प्यारा नहीं मर गया ? नही तो पागल मे प्यार कैसा ? उमी से हँसा-बोला, उसे प्यार किया—किसलिए ? हाथ का पत्थर रखकर उसने उमी के पैर छुये, तब तो मैं बेहद डर गई थी। सचमुच उमी की पूजा करके वह उसे अमर जीवन दे गया। वह पागल नहीं कोई महापुरुष था लेकिन फिर तो कभी नहीं आया।

दूसरे दिन से बाहर का फाटक खुलवा दिया। उमी पर भी वैसी देखरेख न रही। पर शारदा चाहती थी, वह न हुआ। पागल के दर्शन न हुए। बच्ची उमी तो उसे याद रखती ही क्या, पर शारदा के लिए उमी के जीवन के साथ, पागल की स्मृति भी चिरस्थाई होगयी।

युग बीत गया। उमी बदल गई। उसका प्यार का नाम भी बदल गया। अब वह नीलिमा होगई सखियों के लिए भी परिचितों के लिए भी और माँ-बाप के लिए भी। पढ़ी-लिखी, कलाप्रवीणा नीलिमा और वह तब की उमी-कौन कहेगा दोनों एक थी।

शारदा का घर-आँगन उसकी अभिनव लावण्य-श्री से वसन्त का बाग होगया था। उसकी मनोहर चाल से अदा बरसती थी। उसके रत्नाभूषण की रुनझुन से घर मे प्राण पड़ गया था। कोना-कोना जगमग था, पर माँ का हृदय टटोलिये तो अँधेरा, आँसुओं से भीगा हुआ, करुण उच्छ्वास से उष्ण।

आज लडके और लड़की का भेद मालूम हुआ। उसकी थिरकती हुई चाल से जी मे काँटे चुभते थे। उसकी सलज्ज क्रीड़ा से झुकाया हुआ मुख माँ के हृदय को मथ डालता था। उसकी निर्मल आँखों को गम्भीर भाव विषाद के बादल उठा देता और शारदा को आने वाले एक दिन की बात याद दिला देता। वह सोचती-नीलिमा को मैंने इतना प्यार क्यों किया? उसे लड़के से भी बढकर प्यार करके मैं सचमुच ही छली गई।

शारदा का मन कल व्याही जाने वाली लडकी की माँ का हृदय था, बस इतना ही समझ लीजिए।

आखिर अपने सम्पूर्ण मोह-ममत्व को हर्ष के आवरण मे लपेटकर उसने अपनी प्राणोपम नीलिमा का कन्यादान कर दिया। घर से वसन्त श्री विदा होगई। उजड़े हुए चमन की तरह घर-द्वार सोय-सोय करने लगा।

शारदा जहाँ खडी होती, आँसुओं से जमीन तर हो जाती। नीलिमा जल्दी ही आई, पर शारदा जानती थी कि वह कितने दिन की मेहमान है।

स्त्री को लडकी की माता बनानेवाले विधाता ने उसे इतनी सामर्थ्य भी दी होती कि वह उसे अपने हृदय के कोने मे छिपा कर रख सकती।

नीलिमा फिर सुसराल चली गई। शारदा ने भी धीरे-धीरे मन को समझा लिया।

अकस्मात एक रात को शारदा ने बडा विचित्र स्वप्न देखा। उसने देखा—वह गङ्गा स्नान को जारही है। रास्ते मे वही पागल मृत्यु-शय्या पर पडा है। शारदा को देखकर वह कहने लगा, "आप मेरी माँ की माँ हैं। मेरी माँ से कहना, मैं एक बार फिर उनकी गोद मे खेलना चाहता हूँ। ओह! कैसी प्यारी, सुखकर है वह गोद! उनका मेरे ऊपर वह असीम प्रेम, एक बार मैं फिर चाहता हूँ। माँ—प्यारी माँ! लो मै आया।"

शारदा की आँख खुल गई। ऐसा मालूम पड़ा, जैसे सचमुच एक निश्वास के साथ पागल के प्राण निकलकर उड़ गये हों। वे उठकर पलँग पर बैठ गई। रमानाथ शान्त-गम्भीर निद्रा में सो रहे थे। धूप की बत्ती और दीपक दोनों जल रहे थे। शारदा ने कहा, "यह सपना नहीं हो सकता।"

उसी समय उसने उठकर रामायण के पन्ने पर रोरी से कुछ चिह्न बना दिया और पलँग पर जा लेटी, पर शायद नींद की देर तक प्रतीक्षा करनी पड़ी।

ठीक समय के भीतर नीलिमा जब सचमुच बच्चे की माँ होगई तो शारदा के विचार पर मुहर लग गई। फिर तो नीलिमा के हँसने पर भी वह उस बालक के वर्ण-विन्यास और आकार-प्रकार मे सदा उसी पागल का रूप देखती रही।



हृदय की आँखें

दुनियाँ रूप पर मरती है, मैं उसकी कुरूपता का शिकार हुआ। जान-बूझकर, अपनी खुशी से। यही मेरी अक्लमन्दी है।

रूप नहीं, रंग नहीं, कुल नहीं, धन नहीं, पर कुछ था जो उसे देखते ही सीधा मेरे भीतर तक चला गया। उसका गला भारी था, वाणी मे मिठास न थी, पर ज़बान मे ऐसी तेजी थी, कि क्या कहूँ। जले हुए लकडी के कुन्दे को कपड़ा उढ़ा दिया जाय और उसके भीतर कितने ही मेढक एक साथ बोलने को छोड़ दिये जाय, बस ऐसी ही थी वह और उसकी वाणी भी। पर मुझे वह पसन्द आगई। ज्यों ज्यों मेरा उसका परिचय बढ़ा, वह बराबर मेरे हृदय को अपनी तरफ खींचती गई।

मैं एक लम्बे सफर को निकला था। तभी उससे पहली मुलाकात हुई।

मैं एक सराय मे ठहरा था। थकावट से चूरचूर होकर रात को गहरी नींद सो गया था। तडके ही बीवी भटियारी के एक मुसाफिर से गुथ पड़ने की गड़बडी मे नींद खुल गई। उठा तो सामने वही खडी थी।

कंधे पर एक बाँस था, जिसमे पीछे एक छाबडी लटक रही थी। छाबडी मे कई तरह के पक्षी थे। ऐसे-ऐसे कि एक दूसरे को देखते ही खा जायँ, पर सब चुप थे। मालूम पडता था कि कठोर शासन से वे डर रहे थे।

उसने मुझे देखते ही पक्षियों की तरफ उँगली कर के कहा, "बड़े सुन्दर पक्षी हैं। आप कुछ छुड़ायेंगे ?"

मेरे मन में एक चोट लगी। पक्षियों की दीनता भरी आँखों ने मुझे चारों तरफ से घेर लिया। कहते हैं पशु-पक्षियों मे ज्ञान नहीं होता, पर उनके सकेत का एक एक अक्षर मेरे अन्तःकरण मे नक्श हो गया। फिर भी मैंने उसे जवाब दिया—"छुडा तो नहीं, इनको कुछ दाना-पानी करा सकता हूँ।"

उसने कहा—"दाना-पानी ? आहा ! साहब, आप देखते नहीं हैं क्या ? ये दाना-पानी के नहीं छुटकारे के भूखे है। एक बार सिर्फ एक बार खुली हुई हवा मे नीले आसमान के नीचे, आजादी से पंख पसार कर उड़ सकें फिर इन्हे और कुछ दरकार नहीं है।"

मैंने पूछा—"इसका प्रमाण ?"

"यही कि यह बाज उस कबूतर को अपना शिकार नहीं बनाता। क्या एक ही खरोंचे मे यह शिकरा उस बटेर का गोश्त नहीं निकाल सकता था ? लेकिन गोश्त चाहिए किसे ? आजादी के भूखों के लिए दुनियाँ नाचीज है।"

"हाँ, यह तो दुरुस्त है।"

"तो मेहरबान, इन्हें आजादी ख़रीद दीजिये। ये तोता नर है, इसकी मादा इसे वापस पाजायगी तो आपको दुआएँ देगी। ये कबूतरी कल शाम को हाथ लगी है। घोंसले मे इसके छोटे छोटे बच्चे हैं। वे भूख से बिलबिला रहे होंगे। अगर ये दोपहर से पहले न पहुँची तो वे गला सूखने से मर जायँगे।—इस बाज का जीवन क्रूरता का एक अध्याय है जरूर, लेकिन इस वक्त

सब से अधिक रहम के काबिल यही है। इसके बच्चे अभी अंडों मे से निकले हैं, और मादा सख्त बीमार है। इसकी निराश आँखों के सामने इसके घर की तस्वीर घूम रही है।—ये क्या पक्षी है। अधर मे झूमते हुए इसके घोंसले के लिए राजा-महाराजे तरसते हैं।"

"तुम सिर्फ बहेलिया ही नहीं, अच्छी बोलनेवाली भी हो।"

"मेरा बोलना बेकार है, अगर आप पर कुछ असर न पडा।"

"अगर मैं तुम्हारी बात मान ही लूं तो क्या फायदा? तुम और पकड लाओगी और क्या असम्भव, फिर इन्हीं को न फँसा लो।"

"जी नहीं, इन्हे नहीं। मैं ऐसा कभी नहीं करती।—हाँ, दूसरों को तो पकडूंगी ही। यही तो मेरी जीविका है।"

"खैर मै नहीं छुड़ाना चाहता तो तुम इतना जोर क्यों देती हो?"

"मैं पाप बटोरती हूँ, पर चाहती हूँ दूसरे धर्म बटोर लें। यह बुरा है क्या? निरीह जानवरों को आजादी खरीद देना कितना बड़ा सवाब है। मैं उसी के लिए आपसे विनती करती हूँ।"

"तो तुम्हीं क्यों नहीं उन्हे छोडकर धर्म बटोर लेतीं?

"मैं—मैं—मैं!—ओह, मैं! आप क्या कहते हैं?

मैंने अब तक उसे देखा ही था! इन बातों से मेरी आँखें उसके काले कलूटे चेहरे पर जम गई। लम्बा-छरहरा बदन था, बाईस-तेईस की उमर। चेहरे की श्यामता पर क्रूरता की एक

झलक थी। गहरे रंग की आँखें थीं जो दर्शक की आँखों के भीतर तक चली जाती थीं। आगे को उठी हुई नाक और वाहर को निकली हुई ठुड्डी थी। पिचके हुए गाल मेहनत और काली-काली भौहों के वल तेज स्वभाव के सूचक थे।

मुझे लगा कि मैं महाराज शूद्रक हूँ और वह चाण्डाल कन्या। वैसा ही रंग-ढंग वैसी ही चेष्टायें और वैसा ही वाक्चातुर्य।

मैंने पूछा "इतना चौंकती किसलिये हो?"

"धर्म से मुझे चिढ़ है।"

"लेकिन दूसरों को तो सिखाती हो?"

"हाँ, क्योंकि वह अनिष्टकर नहीं है।"

"तुम्हें अनिष्टों से डर नहीं है।"

"विल्कुल नहीं, मै उनसे हिलमिल गई हूँ।"

मालूम पड़ता था, हर एक बात का जवाब उसकी जवान पर रक्खा है। मैंने फिर कहा—अच्छा तुम मुझे शिकार खिलवा सकती हो?

"मैं यह नहीं करती।"

"क्यों, क्या हर्ज है?"

"ओफ़! हत्या!"

"और यह?"—पक्षियों की ओर उँगली उठाकर मैंने संकेत किया।

"यह हत्या नहीं है। जव देखती हूँ धर्म करनेवाले नहीं हैं तव इनसे वचन लेकर छोड़ देती हूँ। आदमी झूठ बोल सकता

है पर पक्षी कभी ऐसा नहीं करते। अपने वादे के मुताबिक फिर मेरे पास आ जाते हैं।"

मैंने हंसकर कहा, "तो पक्षियों की बोली भी जानती हो?"

"यह कौन बड़ी बात है। आप भी जान सकते हैं, अगर थोड़ा ध्यान देने लगें।"

"तब तो मुझे तुम से कुछ सीखना भी पड़ेगा।"

"बस, इसी से आप न समझ सकेंगे। अविश्वास ज्ञान का दुश्मन है।—खैर अब मतलब की बात कहिये। मैं इतनी देर किसी से बात नहीं करती। आप परदेशी हैं, और मेरा कोई देश नहीं, लेकिन आप दूसरों की बात सुन तो लेते हैं। अब कहिये, आप किसे छुड़वाते हैं।"

इस अजीब बहेलिया औरत ने मेरे मन को हैरत से भर दिया। उसकी कुरूपता का जादू, उसकी वाक्‌चातुरी से भर-भर कर मेरे मन को उन्मत्त बना रहा था। उसके इशारे से एक बार फिर मेरी नजर पक्षियों पर गई। इस दफे मुझे ऐसा लगा कि सचमुच हर एक पक्षी मुझ से आजादी की भीख माँग रहा है, और अपनी करुण कहानी नीरव भाषा में बयान कर रहा है। जी में आया, एक दम सबको छुड़ा दूँ। मैंने पूछा—"अगर मैं सबको छुड़ा दूँ तो तुम्हें क्या देना पड़ेगा?"

"ग्यारह पक्षी हैं। अब मेरी मेहनत देखकर दे दीजिये। आपको सुबह सुबह इतना परेशान किया है, इसलिए अब और अपनी तरफ से कुछ न कहूँगी।"

"मैं कुछ नहीं जानता, तुम्हीं बताओ।"

"आप परदेशी हैं। आप सिर्फ डेढ़ रुपया दे दीजिये।"

"परदेशी न होता तो ?"

"तो तीन लेती।"

जी मे था डेढ़ रुपया निकालकर उसके हाथ पर रख दूँ, पर एक मन बोला, मैं भी कैसा अहमक हूँगा अगर इस तरह एक औरत से ठगा जाऊँ। बातचीत के चुलबुलेपन से ही जाहिर होता है कि औरत बड़ी चालाक है क्यों न इसे बता दूँ कि मैं भी घाट-घाट का पानी पिये हूँ।

एक मिनट का मौका पाते ही वह बोली, "बाबूजी, खोलती हूँ खिड़की !"

वह छाबड़ी पर हाथ रख ही रही थी कि मैं चिल्ला पडा, "न, जी नहीं, मैं न छुड़ाऊँगा। तुम ले जाओ।"

उसने हाथ उठा लिए। बांस मे झूलती हुई छाबड़ी उसी तरह कंधे पर रखली और जाते-जाते बोली, "वाह साहब वाह ! मैं इतना समय कहीं नहीं लगाती और इस कदर बकती भी नहीं।"

वह मेरे ऊपर एक प्रहार-सा करके चली गई। मैं उठा और बीबी भटियारी से दो जरूरी बातें करके उसी तरफ को दौड़ा।

सामने थोड़ी दूर पर वह जा रही थी। सैकडों लोग आते-जाते थे, पर वह किसी से कुछ न कहती। चुपचाप चली जा रही थी। मालूम पड़ता था वह अपने ग्राहकों को पहचानती है।

एकाएक वह ठहर गई। उसके सामने एक आदमी भी ठहर गया। वह गरीब और दुखी था। फटे-पुराने कपडे और चेहरे की झुर्रियाँ उसके कर्कश जीवन-संग्राम की कहानी थीं।

उस आदमी ने उसके हाथ पर कुछ रख दिया, उसे जिहाफ़त से सँभालकर उसने खिडकी खोली और बाज को उड़ा दिया।

आगे चलने के लिये उसने छावड़ी पीछे लटका ली, तथा बाँस कंधे पर रखने लगी, तो नहाकर आती हुई एक वैष्णवी के सिर से छावडी का कोना छू गया। फिर क्या था धर्म-प्राण बुढिया ने उसके सात पुरखों का श्राद्ध कर डाला।

उसने बुढ़िया को कुछ जवाब न दिया। एक बार गहरी नजर से उसे देखकर चलती बनी। मैं उसका पीछा करता जा रहा था।

नगर से बाहर खेतों, नालों और बंजरों से होकर वह जाने लगी। मैं अब दूर से रहकर उसे देख रहा था। एक पेड़ की छाया मे वह ठहर गई। छावडी उतारी, खिड़की खोली और एक एक पक्षी को उडाने लगी। दो पक्षी रह गये। एक बुलबुल और एक हरियल। उसने खिडकी फिर बन्द करदी।

अब मुझसे न रहा गया। मैं झट उसके सामने प्रकट हो गया। वह आश्चर्य मे आगई, पर सँभल कर बोली—"मैं जानती थी, आप मामूली आदमी नहीं हैं। आप समझते हैं, पर करते कुछ और हैं, पर आप यहाँतक आजायँगे यह न जानती थी।"

वह मुँह नीचा करके खडी होगई। मैंने डेड़ रुपया निकाला और कहा, "लो, इसीलिए तो मैं दौडा आया।"

उसने सिर उठाकर देखा, फिर कहा, "यह क्या, अब वे पक्षी हैं कहां? बाज के लिए हमे गाहक मिल गया था। बाकी एक दो दिन के वादे पर छोड दिये हैं।—ये दो हैं। इन्हें छुड़ाना हो तो चार आने ही काफी हैं।"

मैंने कहा, "अब तो यह डेढ़ रुपया मैं तुम्हारे नाम पर निकाल चुका हूँ।" उसने मुँह चिचकाकर कहा, "मैं खैरात नहीं लेती।"

"खैरात नहीं, अभी इन दो को छोड दो। फिर जब वे (छोडे हुए) लौटकर आये तो उन्हें भी छोड़ देना।"

"मैं ऐसा नहीं करती, परायी रकम पास रखकर कहीं लालच में पड़ जाऊँ तो बस!"

मैंने हारकर चवन्नी उसके हाथ पर रख दी। उसने खिडकी खोलकर शेष दोनों पक्षियों को उड़ा दिया। तब मैंने पूछा—"भला, इन्हीं बेचारों को क्यों रोक रक्खा था?"

"इनके न जाने से कोई हर्ज नहीं होता था। झाडियो को चहचहा कर आबाद रखने से बड़ा मजा आता है। एक बार वहाँ पहुँचकर फिर कैद मे कौन लौटता?"

"तुम्हारा घर कितनी दूर है?"

"घर—मैं ही मेरा घर हूँ। जहाँ इस छाबड़ी और इस बाँस को रख देती हूँ वहीं मेरी गृहस्थी आजाती है।—आपको ताज्जुब हो रहा है। हो सकता है, पर दुनियाँ मे ऐसे घरवाले थोड़े नहीं हैं।"

"मैं ताज्जुब नहीं करता। मै तुम्हे यह बताना चाहता हूँ कि मैं भी तुम्हारे ही जैसा हूँ। सराय और धर्मशाले मेरे शयनगृह है और सड़कें तथा पगडण्डियाँ घर। न मूँछ की तरह कोई आगे है न पूँछ की तरह पीछे।"

"तो?"

"एक-दूसरे से हमदर्दी करे।"

"यह भी क्या मुमकिन है ?"

"क्यों ?"

"आप मुझे और मैं आपको देख रही हूँ इसीलिए। खै अब आप जाइये मैं भी अपने काम से लगूँगी।"

"तो आपको मुझसे हमदर्दी नहीं।"

"हमदर्दी कर सकती तो—"

"तो ?"

"पैसों से हाथ धोती। दो-एक दिन भूखी रहती।" क वह चलने को हुई।

"मेरी एक बात रही जाती है।" मैंने कहा।

"वह क्या ?"

"मेरे पास कुछ रुपया है।"

"यह तो मुझे मालूम है।"

"तुम्हारी पैसों की झंझट दूर हो जाय, ऐसा अगर मैं करूँ

"मैंने भी किस आदमी से सौदा किया है! अजी आप व मेरे पीछे लगे हैं ? आपने कैसे जाना कि मैं अपना झंझट कि के सिर उतारना चाहती हूँ ?"

"तुम नहीं चाहती, मैं चाहता हूँ कि अपना झंझट किसी सिर पर डाल दूँ।"

"और उस किसी ने मुझे चुना है।"

"बेशक।"

वह बोली, "मेरे कान आज क्या सुन रहे हैं ? अजी नहीं, आप तो कुछ और कहते हैं मैं कुछ और सुनती हूँ। दुनियाँ के हृदय से जिसके हर एक भाग मे वल पड गये हैं, यह ध्वनि नहीं निकल सकती। अगर निकले तो वह हृदय नहीं।—लेकिन मैं किस झंझट मे पड़ी हूँ ? अपने काम से लगूँ। आप भी अपना रास्ता लीजिये।"

मैंने उसकी खाली छावड़ी पकड़कर उसे रोक लिया और कहा, "तुम जो काम करती हो वह मुझे सिखा दोगी ? मैं दुनियाँ के वहुत से धन्धे कर चुका हूँ। तुम्हारा धन्धा मुझे वहुत पसन्द आया।"

वह दूसरी ओर मुँह छिपाकर वैठ गई और सिसक-सिसक कर रोने लगी। मुझे काठ मार गया। अव ध्यान आया कि मैं एक अनजान औरत के पीछे लगा हूँ। चारों ओर कोई आदमी नहीं है। निर्जन वीहड़ देश है। पर कुशल इतनी ही थी कि मैं था वावू वेश मे और वह महाकुरूपा, तथापि उसे इस तरह रोक रखना अनुचित था। मैंने डरते हुए लहजे मे कहा, "मैंने तुम्हारी छावडी मे हाथ लगा दिया, इससे अगर तुम्हे तकलीफ हुई हो तो मै माफी चाहता हूँ।"

उसने उसी तरह रहकर कहा, "आप तकलीफ के लिए परेशान न हों। आज वहुत दिनों वाद रोने का मौका आया है, पहले मुझे खूव जी भरकर रो लेने दें यह मेरा खुशी का रोना है।"

मैं चुपचाप रह गया। क्या मतलव है, कुछ समझ मे न आया। थोड़ी देर खूव हृदय और आँखों को हलका करके वह

बोली, "आप मेरा धंधा सीखेंगे ? अच्छी बात है; पर समझ लिया है क्या ?"

"खूब समझ लिया है !"

"पर एक शर्त है।"

"वह क्या ?"

"यही कि अपने काम के अलावा किसी बात मे दस्तन्दाजी न करोगे।"

"ठीक है।"

"तो जाओ कल सवेरे सराय मे मेरा इन्तजार करना। एक इस तरह की छावडी, एक जाल, एक लकड़ी तैयार रखना। मैं बहुत ठहरूँगी नहीं।—लेकिन तुम्हे भी क्या सूझी है ? इन कुछ घण्टों मे तुम्हें कुछ समझ आजाय तो मैं बुरा न मानूँगी।"

मुझे मालूम पडा, हम दोनों अब एक ही भूमि पर खड़े है। पहले मैं उसे तुम और वह मुझे आप कहती थी। वह भेद दूर हो गया। मैं उसकी बात का प्रतिवाद न कर सका। वह जंगल की तरफ और मै सराय की तरफ चल पड़े।

बीबी भटियारी को मेरी फिकर थी। पहुँचते ही बोली; "जनाब आज तो सुबह से ही गायब हो गये। नाई के लिए कहा था, वह बैठे बैठे चला गया। शिकार के लिए घोड़े का भी इन्तजाम होगया है। कोई आदमी भी साथ ले जाना हो, तो अभी कह दीजिये।"

मैंने कहा, "आदमी तो नहीं, हलवाई की दूकान पर जल्दी खाना लाने का कहला दो। भूख से दम खिंच रहा है।"

वे फौरन आदमी को पुकार कर बोलीं, "करीम जा तो हजारी की दूकान पर।"

पैसों से जो बहुत मोह नहीं रखते, उनके लिए बीबी भटियारी बड़े काम की चीज हैं। दस-पन्द्रह सेकण्ड ठहर कर उन्होंने पूछा, "उस चिड़ीमार हबशिन को शिकार के लिए रख लिया है शायद ?"

"नहीं, शिकार का इरादा ही छोड़ दिया है—लेकिन कल शायद मुझे जाना पड़ेगा। मेरा असबाब कुछ दिन तक यहाँ रहेगा।"

"कोई हर्ज नहीं। आप ही लोगों की तो सराय है।" तब तक पूड़ियाँ आ पहुँची और मैं लगा उनके साथ न्याय करने। खूब खा-पीकर चारपाई पर हाथ-पैर फैला दिये। तीन-चार घंटे की गहरी नींद ली। सुबह से जीवन की रफ्तार और ही रुख लेने जा रही थी, इसलिए रोज की दिनचर्या मे फर्क नहीं पड़ने दिया। बड़े स्वाद से, बड़े शौक से, सभी व्यसन पूरे कर लिए।

मैं क्या कर चुका हूँ और क्या करने की इच्छा बाकी है, यह जान लेना सहज नहीं है, पर उस दिन एक-एक बात जी मे उठने लगी। निकम्मी से निकम्मी चीज छोड़ते आदमी को दुख होता है, पीछे फिरकर देखने की इच्छा होती है, फिर मैं ही कैसे अपने मन को समझा लेता ? जिस जीवन और जिस रफ्तार मे अनेक सुख-दुख देखे थे, उनकी बड़ी कीमत थी। इसीसे मै कुछ उद्विग्न था, पर एक नया प्रयत्न था, इसलिये कुतूहल और व्यग्रता भी थी।

उस थोड़े से समय में मैंने अपनी सैकड़ों इच्छाएँ पूरी कीं, पर एक बड़ा काम भूल गया। जिन चीजों के लिए उसने कहा था उन्हीं को मैं भूल गया। सुबह सराय के बाहर ज्यों ही उसकी शक्ल दिखाई पड़ी त्यों ही मुझे ख्याल आया। अब करता तो क्या, यों ही भागा। बीबी भटियारी को चलते-चलते थोड़ा इशारा कर दिया।

मुझे देखते ही उसने कुछ हँसकर कहा—"मालूम पड़ता है आप तकलीफों के तले आने से पहले ही समझ गये ?"

मैंने कहा, "सो बात नहीं। मेरे इरादे में जरा-सा भी फर्क नहीं पड़ा है। हाँ, थोड़ी लापरवाही हुई है और उसका मुझे निहायत अफसोस है। मैं "

"रहने दो, मैं समझ गई। उन चीजों को तुम खरीद नहीं सके। एक नये आदमी के लिये खरीदना कठिन भी था, पर क्या इरादा बदल नहीं सकता ?"

"तुम्हारी इच्छा है, बदल दूँ ?"

"कभी नहीं। एक बार 'हाँ' कहकर मैं कभी 'ना' न कहूँगी। आओ चलो। मैं देखती हूँ जो चीज मैं तुम्हें देना नहीं चाहूँगी वही देनी पड़ेगी। तब क्यों दूर भागूँ ? ऐसे 'दूर' जिससे पास आजाने की नौबत पहुँचे।—अच्छा लो, मेरी ही छाबड़ी और लकड़ी ले लो। अब पिछला सम्बन्ध भुलाकर मैं तुम्हें उस्ताद की तरह हुक्म दूँ और तुम शागिर्द की तरह उस पर अमल करो। लेकिन नहीं, अभी नहीं। बाजार के आदमियों को तुम्हारे ऊपर हँसने का मौका मैं नहीं दूँगी। जहाँ हम लोग कल मिले थे, ठीक उसी जगह पहुँचने पर ये चीजें मेरे कंधे से तुम्हारे पर पहुँच जायँगी।"

मैं सचमुच इस वक्त अपने को वेढंगी दशा मे समझ रहा था। अनजान जगह थी जरूर, पर समाज का ख्याल तो था। एक आम सड़क पर उससे इस तरह घुलमिल कर वातें करते जाना कुछ वेजोवा लगता था पर उसकी आखिरी वात ने अन्दर तक पहुँच कर मेरी भावना को छू लिया। मैंने कहा, "जव ओखली मे सिर दिया है तव चोटों से डरूँगा ?"

"पर मैंने ओखली वनकर जिसका सिर लिया है उसे क्या निर्दयता से कुचल डालूँगी ? मैं भी तो देखती हूँ दुनियाँ मे कितनों ने इस तरह अपने को ओखली मे डाल दिया है ?"

"यह वात है ?"

"यही तो, जीवन की लता को चरम सिरे तक वढ़ा चुकी हूँ, एकान्त मे—निर्जन मे। अव दो-एक दिन चिडियों की चहचह पर हुकुम चला सकूँ तो फिर वस काफी है।"

"वात मेरे साथ भी ऐसी ही है पर विलकुल और तरह से। मैं दुनियाँ मे रहकर दुनियाँ से अलग रहा हूँ। घरों मे सोकर घरों से वाहर रहा हूँ। आदमी-औरतों से हँसवोल कर उनके सामीप्य से वंचित रहा हूँ। जिन्दगी के दरवाजे दरवाजे मे जो भीड़ की रेलपेल देखी है घड़ी भर विश्राम की छाया मे वैठकर उसका अर्थ वाँच सकूँ तो—।"

"ठीक है, तुम्हारे इतिहास का जो पन्ना सचित्र है वह मेरा कोरा है और तुम्हारा जो कोरा है मेरा सचित्र। वस, एक के ऊपर दूसरे को चिपका देने से दोनों की अपूर्णता दूर हो जायगी।"

मुझे मालूम पड़ा जैसे पहेली के भीतर एक अर्थ चमक गया—एक उलझ हुए गुच्छे के भीतर सिरा मिल गया। मैं जैसे इसी बात को ढूँढ रहा था। उसकी पहली झलक से लेकर इतने लम्बे परिचय के भीतर जो भाव खो गया था, वह एक दम ऊपर आ गया। अब मैंने उसे बिलकुल दूसरी आँख से देखा—ऐसी आँख से जो एकदम आर पार हो गई।

दुनियाँ की परवाह न करके मैंने उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा, "तो बस, अब पन्नों को एकाकार हो जाने दो। लाओ, मैं ले चलूँगा।"

उसने सब कुछ मेरे कंधे पर सँभला दिया, फिर भरे हुए गले से कहा, "तुम इतनी जल्दी मेरे पास आ रहे हो कि मुझे भय होता है।"

"क्यों ?"

"कि हम लोग उतनी ही दूर न हो जायँ।"

"ऐसा भी हो सकता है ?"

"जरूर होगा, मेरे मन मे योंही कोई बात नहीं आती।"

"तुम एक पहेली हो।"

"झूठ।"

"तो क्या हो ?"

"पहेली का उत्तर।"

"कौन जानें।"

"जानते हैं आनेवाले कल के पहर, पूछ लेना उनसे। तब देखना मैं पहेली हूँ कि उसका उत्तर।"

"तुम मेरी परीक्षा लेती हो ?"

"अगर यही हो सकता–।" कहकर उसने गहरी साँस खींची।

बड़ी देर तक बातचीत बन्द रही। हम दोनों अपने अपने मन का भार मन ही में लिए चले जाते थे। कोई तीन मील चलने के बाद एक वन शुरू हो गया। उसी मे से हम जाने लगे। करीब एक मील और बढ़ने पर गंभीर वन में घुसे।

वन के बीच मे पहुँचने पर एक सोता मिला। एक उभरी हुई चट्टान के तल से हीरे जैसा निर्मल पानी निकल निकल कर बह रहा था। उसने मुझसे कहा, "यहाँ थोड़ा ठहर जाओ। दिन खूब चढ़ गया है। खाने-पीने का वक्त हो गया। लाओ मैं आग जलाऊँ, तुम लकड़ी बीन लाओ। कुछ खाने-पीने को बने।"

भूख लग रही थी। मैं झटपट काम मे लगा। उसने एक पोटली मे से आटा निकाला। चट्टान पर रखकर उसे सान लिया और दो मोटी-मोटी रोटियाँ डाल दीं।

मैं हाथ मुहँ धो चुका तो उसने कहा, "आओ बैठो, क्या देर है ? अपना तो ऐसा ही खाना होता है।"

"हो जाने दो। हम दोनों साथ खायेंगे।"

"नहीं तुम बैठो। साथ बैठने मे कहीं कम पड गया तो ?"

"कम क्यों पड़ेगा ?"

"न सही, पर मैं तो पीछे ही खाऊँगी।"

मैं बैठ गया। उसने एक रोटी पत्ते पर रखकर मेरी हथेली पर रखी। रोटी के ऊपर नमक की दो-तीन डलियाँ रख दीं।

पाठक कहते होंगे, मैं भी कैसा जानवर हूँ जो हलवाई की दूकान के लच्छेदार तर माल खाकर अब ऐसा अजीब खाना खाने मे लगा । लेकिन क्या कहूँ, नमक की उन डलियो और बाजरे की उस रोटी मे जो मजा आया वह मेरी याद मे मुझे कभी नसीब न हुआ था ।

वो के नैनों से परोसने वाली 'घाघ' ने बड़ी तारीफ की है । कहा है, तब जमीन ही पर स्वर्ग मिल जाता है । खाते-खाते मैने धीरे धीरे गाना शुरू किया 'बिन घरनी घर भूत को डेरो ।'

उसने अपनी सादी हँसी हँसकर कहा, "और तो नहीं चाहिये न ? गाने मे कहीं खाना न भूल जाना ।"

मैने कहा, "इसकी फिक्र मत करो । बहुत दिन के बाद मुझे गाना सूझा है ।"

"मेरे रोने की तरह" उसने नीचा मुहँ करके कहा । "अच्छा गाओ । खूब जी भर कर गालो । गाना और रोना कभी ही कभी मिलते हैं ।"

जब तक वह खा-पी चुकी, तब तक मैने आलाप ली । तैयार होकर उसने कहा "अब उठाओ अपना सामान, चलो अपने काम पर लगें । खाने के बाद आराम करने की आदत को यहाँ छोड़ना होगा ।"

मैं चट उठा । सब चीजों को कंधे पर रक्खा और कहा, "बोलो किधर चलूँ ? मुझे घूमने मे ही मजा आता है ।"

"तब देखती हूँ तुम भागोगे नहीं । यह काम नदी-नाले, वन-बाग, मैदान-पहाड सब की खाक छानने का है ।"

"तुम्हे मेरी दृढ़ता पर विश्वास है यह अच्छा है।"

हम दोनों और आगे चले गये, जहाँ बड़े-बड़े झाड़ अपना भीम-रूप लेकर खड़े थे। उसने कहा, "अब तुम बैठो, मैं जाल लगाऊँ। मेरी उस्तादी का हुनर देखो।

मैं बैठ गया। उसने एक सघन झाड़ी के नीचे जाल लगाया, फिर आकर मेरे पास बैठ गई। मैंने कहा, "हम दोनों को कैसा मिलाया भगवान ने ?"

"वह ऐसा ही करता रहता है। सदा अघट घटनाओं को घटाने मे ही उसका कौशल है। न मालूम दूसरे ही क्षण उसे और भी क्या सूझ सकता है।"

"हाँ, और क्या"—मेरे मुहँ से निकला था कि वह चीख पड़ी। "लो वह आगई !"

देखा, तो एक चिडिया जाल मे आ फँसी थी। उसने झट लाकर उसे छावड़ी मे बन्द किया। मैंने कहा, "तुम बडी होशियार हो। भला, यह तो कहो यह काम क्या तुम हमेशा से करती आ रही हो ?"

"यह सब जानकर क्या करोगे ?"

"अपने ज्ञान मे दो पंख लगाऊँगा। तुम्हे बताने मे कुछ हर्ज है क्या ?"

"जब हम दोनों एक ही नाव पर सवार हो गये है तो क्या छिपा कर रक्खूँगी ?"

"तो मेरे प्रश्न का उत्तर क्यों नहीं देती ?"

"दूँगी, पर वक्त आने पर। अभी तो इतना ही समझो कि यह पेशा मैंने आपही सीखा है। मेरा यह जातीय कर्म नहीं है।" कहते कहते उसका कण्ठ कुछ रुद्ध होने लगा।

"फिर भी तुम इतनी होशियार हो गई हो। हां, और वह बात क्या सच है कि तुम परिन्दों की बोली जानती हो?"

"तुम्हें मेरी बातों पर शक भी है क्या? वक्त पर अगर चाहोगे तो मैं तुम्हें सब कुछ सिखा देने मे संकोच न करूँगी तुमने देख तो लिया; अब तुम्हीं जाकर जाल लगाओ न।"

मैं जाल लेकर दूसरे झाड़ों के पास जा पहुँचा। अभी डाला भी न था कि वह चीख पड़ी, "अरे, दौड़ो रे! डस लिया, मुझे डस लिया!"

मैं जाल फेंककर भागा। वह झुकी हुई पैर पर हाथ रक्खे काँप रही थी। एक जगह से खून निकल रहा था। मैंने घबड़ाये हुए पूछा, "क्यों, क्या हुआ?"

"साँप—मुझे साँप ने काट लिया। ओह, मुझे जहर चढ़ रहा है! तुम मुझे वहाँ ले चलो।" कहकर उसने हाथ के इशारे से एक ओर बताया।

मैंने झटपट उसे गोद में भर लिया, और उधर लेगया। उसने कहा, "बस, लाओ देखूँ।"

वह घास मे इधर उधर कुछ तलाशने लगी, फिर बोली, "यहीं तो थी। हाय! आज मालूम पड़ता है मेरी मौत आगई

है। नहीं तो उसके हजारो पौधे रहा करते थे। अब कोई उपाय नहीं है। मुझे पकड़ो, मैं गिरी।"

मैं उसका हाथ तो साधे ही था। अब उसे भुजाओं मे कस लिया और धीरे धीरे गोद में लिटा लिया और भयभीत होकर कहा, "डरो नहीं, मुझे बताओ मै लाऊँ। अरे! आँख तो खोलो।"

उसके पलक धीरे धीरे झँप रहे थे। उसने कहा, "नहीं, अब तुम कहीं न जाओ। बस, मुझे कसकर अपनी छाती से लगा लो, और—और—और, मेरे होठों पर अपने होठ लगा दो। एक दफे मुझे चूम लो। मैं बहेलिया नहीं हूँ, तुम डरो नहीं।"

मैं अपने होश मे नहीं था। मैंने उसे कसकर छाती से चिपका लिया और उसके नीले होठों को बेतहाशे चूमने लगा।

थोड़ी देर में वह निस्पन्द और निश्चेष्ट हो गई, फिर भी मैंने उसे उसी तरह सटाये रक्खा। तीसरे पहर से लेकर साँझ और वह रात ओस और आँसुओं से भीग कर काट दी।

सवेरे उसके शव को नदी मे बहाते वक्त एक कागज का टुकड़ा उसके पास से गिर गया। शायद किसी पत्र का एक हिस्सा होगा। उससे इतना ही मालूम हुआ कि उसकी कुरूपता के कारण उसे कभी किसी ने चाहा न था। वह कभी प्यार न की गई थी।

उसके शव को बहाते बहाते एक बार मैंने बड़े प्रेम से उसका आलिगन किया और उसके गालो पर चुम्बन की अन्तिम छाप लगाते हुए कहा, "जाओ देवी! जिन्होंने तुम्हारे यौवन-सौन्दर्य का अपमान किया है उन्हे हृदय की आँखे विधाता ने न दी थीं।"

मुझे मालूम पड़ा चार दिशाओं ने कभी ऐसे दो प्रेमियों को न घेरा होगा, जिन्होंने पहली बार प्यार किया हो और पहली ही बार प्यार किये गये हों और जिनका प्यार एक ही चुम्बन और एक ही आलिंगन मे सदा के लिए समाप्त हो गया हो।

उसकी पकड़ी हुई चिड़िया को उसकी निशानी के बतौर लेकर मै सराय मे लौट आया। बीबी भटियारी दौड़ कर आई; पूछा, "आप आगये ? बडे परेशान दिखते हो। नाई को बुलाऊँ ? खाना बाजार से मँगवाऊँ ?"

मैंने कहा, "नही, कुछ मँगवाओ नहीं। मेरी कोठरी खोल दो। थोडी देर आराम करूँगा। इस परिन्दे को थोड़ा-सा कुछ खिला सको तो अच्छा।"

मैं कोठरी मे जाकर लेट गया। नींद तो आई पर सपनों से भरी हुई, और हर सपने मे मैं और वह। आँख खुलते खुलते जैसे उसने हाथ झकझोर कर कहा, "मैं तुम्हारे पास से कहीं न जाऊँगी। शरीर नहीं आत्मा तो है, उसे तुम कैद करके रख लो। लेकिन इस बेचारे परिन्दे को क्यों कैद किये हो ? मेरी निशानी तो मै ही हूँ।"

मैंने जागते ही उस पक्षी को छोड दिया। उस दिन से मैं जितने सपने देखता हूँ सब मे एक वही दिखाई देती है। इसी से सोचता हूँ कि क्या सचमुच मैंने उसकी आत्मा को बन्दी बना रक्खा है ?



भिड़न्त

खिलकती हुई दुपहरी ढल रही थी। खेतो के अनाज को घर मे लाकर किसान दो दिन के लिए वेफ़िक्र हुए । पेड की छाया मे गोष्ठी जमी थी, ऐसी जगह जहाँ से एक तरफ के ढालू पहाड़ी खेत दूर तक दिखाई पडते थे। पहाड़ी गावों से दृश्यदर्शन का करीव करीव वही मजा होता है जो वादलों की सवारी से होता। पहाडी गाँव और पहाड का ही दृश्य—ज़रा सोचिये, क्या मज़े की गोष्ठी होगी!

इतना ही नहीं, उस वक्त मजे का प्रसङ्ग छिड़ा था। वूढे और जवानों के दो दल होगये थे। वूढ़ों के नेता थे पुरोहित राम भवन। अट्ठावन साल की उमर थी। वाल सफेद होगये थे। दो लड़के और एक लड़की के वाप थे, और चार-पॉच नाती-पोतो के पितामह। पॉच साल पहले दूसरी स्त्री के मर जाने पर तीसरा विवाह कर चुके थे।

पंडित जी को शिकायत थी कि—नये जमाने की स्त्रियाँ विगड रही है। वह जमाना और था जब सीता और सावित्री होती थीं।

इसके लिय वे अपनी तीनों स्त्रियो के उदाहरण पेश करते थे। कोई वहुओ के तो कोई लड़कियों के उदाहरण देता।

जवान कहते थे—जी नहीं, जमाने के साथ स्त्री-पुरुष दोनों ही वदल गये है। उस समय भी स्त्रियों मे देवियाँ और राक्षसी थीं, आज भी है। पुरुषों मे उस समय भी राम और रावण थे,

और आज भी है। आप लोगो को स्त्रियो के कटु अनुभव हुए हैं पर हम लोगो के लिए वे वही है जो राम-लक्ष्मण के लिए सीता थी। आज भी उनके दो दिन के लिये ससुराल चली जाने पर हमे सारा घर सूनी पचवटी लगता है। हम बादलों से उनका सन्देश पूछने लगते है। पक्षियों मे उनका शब्द सुनने लगते हैं।

बूढ़ों ने उनका तर्क नहीं माना, कहा—तुम्हे जवानी की मस्ती के कारण कुछ सूझता नहीं।

युवकों ने उत्तर दिया—समय के साथ आप लोगों का हृदय भी सूख गया है। सूखे-सूखे और हरे-हरे का ही मेल खाता है। आम के ठूंठ पर कोयल नहीं बोलती।

किस्सा कोतह, अन्त मे यह तय हुआ कि एक तीसरे पक्ष की राय ली जाय। तमाम गोष्ठी मे ऐसा आदमी बेताल था।

इस शख्स ने अब तक ब्याह न किया था। उमर तीस से दो ऊपर हो गई थी। अपने भाई चतरू के साथ रहता था। घर मे बहनें भी थीं और भाभियॉ भी। इसके अलावा गॉव के बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सब से उसकी पटती थी यद्यपि उसका स्वभाव बडा उग्र था। उसकी बात विधाता के लेख की तरह होती थी।

सबने बेताल को पंच बनाया। उससे कहा—अजी, तुम्हारा अनुभव दोनों तरह का है। ठीक ठीक कहना।

बेताल मौज मे था। उसने हूँकारी भर ली, और हॅसकर कहा—तो पच को पच का आसन दिया जाय।

सब लोग खिसक बैठे। बेताल उठकर सबके बीच मे जा बैठा और बोला- अगर बूढ़ों के ब्याह और जवानों के—

इतना कहा था, कि सामने देखकर वह चिल्ला पड़ा—अरे रे ! सिंह ने वह गाय ली·····

सबकी नजरें उधर घूम गईं। देखा तो कुछ दूर पर कई ढलानों के नीचे एक खेत में सचमुच सिंह ने गाय घेर रक्खी है। भय से गाय के प्राण निकल रहे हैं पर सिंह उसे मार नहीं रहा है। जिधर हटने का प्रयत्न करती है उधर ही खड़े होकर वह उसे रोक देता है।

डर से दर्शकों की नसों में खून जम गया। वेताल ने कड़क कर कहा—अरे ! चलो, देखते क्या हो ?

वेताल ने अपनी कुल्हाड़ी उठा ली, पर कोई टस से मस न हुआ। उसने खीझकर कहा—इतने मर्दों के सामने शेर गाय को खा जायगा ? धिक्कार है इस मर्दुमी को !

कोई कोई काँपते और खिसकते हुए बोले—भला, जान-बूझकर कौन जायगा मौत के मुँह में !

वेताल ने बहादुरी से उस ओर उछलकर कहा—तुम न जाओ नामर्दो ! यह वेताल जायगा, लेकिन याद रक्खो अगर मैंने सिंह को मार लिया तो इस गाँव में एक आदमी नहीं रहने पायगा। बूढ़ों से लेकर स्त्री-बच्चों तक एक एक को हलाल कर डालूँगा !

उसकी वाणी में शौर्य की तेजी थी। सबके हृदयों को पार कर गई, लेकिन गीदड़ों का वह झुण्ड सनका नहीं।

बहादुर वेताल, कुल्हाड़ी लिए, हवा की तेजी से सिंह की तरफ झपटा।

[२]

शेर की दाढ आदमी के खून से न रँगे वहीं तक गनीमत है। जहाँ एक वार चसका लगा कि फिर आदमी का शिकार किये विना उसे चैन नहीं।

यह शेर भी आदमखोर था। ढाई-तीन महीने से उसने सारे गढवाल में तहलका मचा दिया था। कितने ही आदमी, औरतों और बच्चों को वह खा चुका था। रास्ते बन्द हो गये थे। गाँवों मे चौकसी रहती थी। खेतों मे लोग बड़ी होशियारी से डरते-डरते काम करते थे। औरतें पानी लेने जाते काँपती थीं।

राज की तरफ से उसको मारने का इनाम निकला था। बडे बडे मशहूर शिकारी, अचूक निशानेबाज और दिलावर लोग उसकी तलाश मे फिरते थे। लोग दौड़ते दौड़ते परेशान होगये थे। अँधेरी रातों मे शिकारियों के झुंड पहाडी जंगलो, खेतों और नदियों के किनारे उसकी तलाश करते थे। धोखे मे और कई शेर और बाघ मार दिये गये थे पर इसका पता न चलता था। तिस पर मजा यह कि आज यहाँ तो कल पचीस, तीस, कभी चालीस मील की दूरी पर पहुँचकर किसी न किसी, आदमी-औरत या बच्चे को जरूर पकड कर खा जाता।

लोगों मे विश्वास फैल गया था कि शेर बन कर कोई महा-भयंकर राक्षस घूमता है। वह माया करना जानता है। तभी तो कभी यहां दूसरे ही क्षण वहाँ।

यहां तक कि और भी भयंकर अफवाहें उठने लगीं थीं। कोई कहता था कि वह हवा मे उडकर चला जाता है। कोई कहता था कि वह दो पैरों से भाग रहा था और एक एक

डग एक-एक मील की रखता था। कोई कहता था कभी वह सुअर बनकर घूमता है, कभी भैंसा बनकर चरता है, कभी बकरा बनकर फिरता है।

एक गाँव में, एक दिन सवेरे देखा गया कि एक स्त्री गायब है, और बाड़े में एक गाय भी नहीं है। बाद में स्त्री का कटा हुआ सिर और दो एक हड्डियाँ गाँव के बाहर एक झाड़ी के नीचे मिलीं। गाय जीती-जागती मिल गई। तभी से उस किसान का ख्याल है कि गाय को किसी गुफा में छिपाकर पिछली शाम को वही आदमखोर गाय बनकर घर आगया था और रात में उसकी स्त्री को लेकर चलता बना।

[३]

ऐसा था वह शेर। इसीलिए वह गाय को इस तरह घुमा घुमाकर गाँव वालों को ललकार रहा था। बेताल जानता था, पर वह गीदड़ या कायर न था।

बेताल ने गरजकर ललकार दी—खबरदार!

शेर गाय को छोड़कर खड़ा होगया, जैसे वह यही चाहता था।

विशाल-विस्तृत ऊँची-नीची सीढ़ियों की तरह भूमि पर झपटता हुआ बेताल नीचे जा पहुँचा। एक खण्ड और उतरता कि शेर और वह दोनों एक ही धरातल पर साँस लेते।

लेकिन शेर उसे और तकलीफ देना न चाहता था। अपने आहार के साथ न्याय करने की उसे इतनी हड़बड़ी थी कि एक खण्ड ऊपर से ही बेताल की आँख मिली और शेर उछला।

वेताल तैयार था। ज्यों शेर के अगले दो पञ्जों ने सामने की जमीन को पकड़ा कि उसने दी तान कर कुल्हाड़ी।

शेर चोट खाकर नीचे जा गिरा, पर गिरने की देर थी कि वह गरज कर इतनी जोर से उछला कि वेताल के सिर पर होता हुआ और भी एक खण्ड ऊपर जा पड़ा।

वेताल के पैर के नीचे ज़मीन काँपने लगी। दूसरे ही क्षण ऊपर से झपटे हुए शेर के खूँख्वार पञ्जों का वह शिकार होगा।

पर दूसरा क्षण उसे वहाँ हुआ ही कब। वह जान को हथेली पर रखकर, विजली की तेजी से, सिंह से भी एक खण्ड ऊपर जा खड़ा हुआ, और ललकार दी।

क्रोधित सिंह गरजा और तड़पा, पर इससे पहले कि वह वेताल के सिर पर वार करे उसने ऐसा करारा कुल्हाड़ी का हाथ मारा कि उसका दूसरा पंजा भी बेकाम हो गया। सिंह माँस के लोथड़े की तरह ज़मीन पर गिरकर अपने तीखे दाँत खोलकर गरजने लगा। अभी तक उसमें इतना पराक्रम था कि एक भारी बैल को एक ही झटके में चीर डालता। वेताल ने कौंधे की तरह लपक कर एक आघात उसके सिर पर किया और सिंह चारों खाने चित्त गिर पड़ा। भभक-भभक कर ताजा खून ज़मीन पर बड़े वेग से बहने लगा।

इसी दम चतरू ने पीछे से आकर वेताल को अपनी गोद में भर लिया। उसने ज्यों ही घर पर सुना था कि वेताल अकेला सिंह से भिड़ने गया है, त्योंही वह दौड़ा आया। उसे भय था कि वह भाई की लाश को पायेगा पर दूर से ही उसका पराक्रम,

उसका साहस, उसकी बहादुरी देख कर वह दंग रह गया। सामने शेर पडा था—वही शेर, जिसके नाम से बड़े-बड़े काँपते थे।

बेताल ने भाई की बाहों से अपने को छुड़ाते हुए कहा—अब गाँव मे अकेले हमी लोग रहेंगे (शेर की तरफ इशारा करके) अभी इसमे झपटने की दम है क्या ? तुम इसे देखना, मैं जाकर एक एक का गला उडाऊँगा।

बस, वह भागा। चतरू फिजूल ही पीछे से चिल्लाता रहा।

(४)

इधर गॉव के लोगों ने देखा कि शेर जमीन पर गिरा। बस, वे अपने अपने घरों को दौड़े। अपने स्त्री-बच्चे, भाई-बहनों आदि को लिया और भाग निकले। जरा देर मे सारा गाँव खाली होगया। आदमी कहीं देखने को न रहा। जो जहाँ था वहीं से भाग निकला।

सबको विश्वास था, कि बेताल अपनी प्रतिज्ञा बदलेगा नहीं। उसके अटल स्वभाव को सब जानते थे। पत्थर की लकीर की तरह उसकी बात अमिट होती थी।

बेताल शेर को भाई के सामने पड़ा छोड कर खून से आँखें रँगे हुए गॉव की तरफ दौडा। रास्ते की हवा लगने से गुस्सा कुछ शान्त हुआ, दिमाग अपने ठिकाने पर आने लगा। गाँव के करीब पहुँचते पहुँचते उसका मन फूल सा हलका होगया। किसी को एक कड़ा शब्द कहने की भी इच्छा न रही। बल्कि विजय के गर्व से मन खुश होगया। लोगो की आखों मे अपने

नये और अत्यन्त उच्च स्थान की कल्पना करता हुआ वह गाँव में घुसा।

एक घर, दो घर निकले। रास्ता निकल गया। कहीं कोई नज़र न आया। लड़का, औरत, आदमी, बूढ़ा कोई दिखाई न पड़ा।

उसने मुखिया के घर पर पुकारा। पुरोहित रामभवन को आवाज़ दी। दो तीन ठाकुरों के घर थे। उनको बुलाया, पर कहीं कुछ जवाब नहीं। घरों मे घुसा तो कोई नहीं। चीज़ें जहाँ की तहाँ पड़ी थीं। किसी का चौका पड़ा था। किसी का चूल्हा जल रहा था। किसी का साग कतरा हुआ पड़ा था। किसी के खुले घर मे कुत्ते और बिल्लियाँ अपना राज चला रहे थे। वह करीब करीब आधे गाँव मे चक्कर लगा आया, पर आदमी के दर्शन न हुए।

वह क्षणभर विमूढ सा खड़ा रह गया। सोचते-सोचते उसे ध्यान आया—हो न हो, उसी के डर से सब लोग भाग गये हैं। तब तो उसके दिल पर गहरी चोट लगी।

वह स्तब्ध सा खड़ा होकर सोचने लगा—क्या यह भी सम्भव है कि मैं अकेला गाँव मे रह सकूँगा? न, यह कभी न होगा। इस ज़रा सी देर मे ही तो कलेजा मुँह को आने लगा है। चारों ओर से सूनापन जैसे राक्षस बनकर खाने को दौड़ने लगा है। ये लम्बे-लम्बे दिन, ये काली-काली रातें और यह निर्जन सूना गाँव।

वह सिर पकड़ कर बैठ गया। तब तक चतरू दौड़ता हुआ आया और बोला—अरे! भाई क्यों—क्या बात है?

उसका साहस, उसकी बहादुरी देख कर वह दंग रह ग। सामने शेर पडा था—वही शेर, जिसके नाम से बड़े कॉपते थे।

बेताल ने भाई की बाहों से अपने को छुड़ाते हुए अब गाँव मे अकेले हमी लोग रहेंगे (शेर की तरफ इशारा करके अभी इसमें झपटने की दम है क्या ? तुम इसे देखना, मैं एक एक का गला उड़ाऊँगा।

बस, वह भागा। चतरू फिजूल ही पीछे से चिल्लाता रहा।

(४)

इधर गॉव के लोगों ने देखा कि शेर जमीन पर गिरा। बस, वे अपने अपने घरों को दौड़े। अपने स्त्री-बच्चे, भाई-बहनों आदि को लिया और भाग निकले। जरा देर मे सारा गाँव खाली होगया। आदमी कहीं देखने को न रहा। जो जहाँ था वहीं से भाग निकला।

सबको विश्वास था, कि बेताल अपनी प्रतिज्ञा बदलेगा नहीं। उसके अटल स्वभाव को सब जानते थे। पत्थर की लकीर की तरह उसकी बात अमिट होती थी।

वेताल शेर को भाई के सामने पड़ा छोड़ कर खून से आँखें रँगे हुए गॉव की तरफ दौड़ा। रास्ते की हवा लगने से गुस्सा कुछ शान्त हुआ, दिमाग अपने ठिकाने पर आने लगा। गाँव के करीब पहुँचते पहुँचते उसका मन फूल सा हलका होगया। किसी को एक कड़ा शब्द कहने की भी इच्छा न रही। बल्कि विजय के गर्व से मन खुश होगया। लोगो की आखों मे अपने

नये और अत्यन्त उच्च स्थान की कल्पना करता हुआ वह गाँव में घुसा।

एक घर, दो घर निकले। रास्ता निकल गया। कहीं कोई नजर न आया। लड़का, औरत, आदमी, बूढ़ा कोई दिखाई न पड़ा।

उसने मुखिया के घर पर पुकारा। पुरोहित रामभवन को आवाज दी। दो तीन ठाकुरों के घर थे। उनको बुलाया, पर कहीं कुछ जवाब नहीं। घरों मे घुसा तो कोई नहीं। चीजें जहाँ की तहाँ पड़ी थीं। किसी का चौका पडा था। किसी का चूल्हा जल रहा था। किसी का साग कतरा हुआ पड़ा था। किसी के खुले घर मे कुत्ते और बिल्लियाँ अपना राज चला रहे थे। वह करीब करीब आधे गाँव मे चक्कर लगा आया, पर आदमी के दर्शन न हुए।

वह क्षणभर विमूढ सा खड़ा रह गया। सोचते-सोचते उसे ध्यान आया—हो न हो, उसी के डर से सब लोग भाग गये है। तब तो उसके दिल पर गहरी चोट लगी।

वह स्तब्ध सा खड़ा होकर सोचने लगा—क्या यह भी सम्भव है कि मैं अकेला गाँव मे रह सकूँगा? न, यह कभी न होगा। इस जरा सी देर मे ही तो कलेजा मुँह को आने लगा है। चारों ओर से सूनापन जैसे राक्षस बनकर खाने को दौडने लगा है। ये लम्बे-लम्बे दिन, ये काली-काली रातें और यह निर्जन सूना गाँव।

वह सिर पकड़ कर बैठ गया। तब तक चतरू दौड़ता हुआ आया और बोला—अरे! भाई क्यों—क्या बात है?

बेताल ने दुखित कंठ से कहा—सारा गाँव खाली होगया। वे सब गाँव छोड़ कर भाग गये।

चतरू—तो अब?

बेताल—भागकर चलो, उन्हे लौटायें।

बस, दोनो भाई ऊबड़-खाबड पहाड़ी पगडंडियों से जोर जोर से चिल्लाते हुए भागते नजर आये।

जो गाँव छोड़कर भागे थे, उन्हे पीछे मुडकर देखने की हिम्मत न थी। ऐसा मालूम पड़ता था, हरएक के पीछे एक एक शेर खाने को दौड़ रहा है। जिधर सब लोग भागे चले जा रहे थे उधर एक छोटी सी नदी को पार करते ही सघन जंगल शुरू हो जाता था—ऐसा जंगल जिसमे खूँखार जानवरों की कमी न थी, पर उस तरफ किसी का ध्यान ही न था। इस वक्त तो क्रोधित बेताल की कुल्हाड़ी से अपनी अपनी गर्दनो को बचाने की ही सब को लगी थी।

बच्चों को पसीना आगया था। लड़कियों और बूढ़ों की दम फूल गई थी। पत्थरों की ठोकरें लग जाने से स्त्री-पुरुषों के पैर घायल हो गये थे, पर दौड़ा-दौड के सिवा दूसरी बात न थी। मालूम पडता था कि पुराने समय की तरह एक बार फिर नैपाली आक्रमणकारियों की भयानक चढ़ाइयाँ आरम्भ होगई हों।

बेताल भागते-भागते जब ऐसे ऊँचे टीले पर पहुँचा, जहाँ से पलायित लोगों का झुंड दिखाई पड़ता था, तो उनकी दुर्दशा देखकर उसकी आँखों मे आँसू आगये। उसे अपनी दुष्ट क्रूर प्रतिज्ञा पर पश्चाताप होने लगा। उसने अपनी तमाम शक्ति लगा कर आवाजें देना आरम्भ किया।

उधर लोगों ने समझा, वह सामना करने को ललकार रहा है। वे और भी वेग से भागने लगे। ज्यों ज्यों वेताल दौड़ता और शोर मचाता था त्यों त्यों लोग भागते थे। स्त्रियों और पुरुषों ने बच्चों को कंधों पर लाद लिया था। नदी थोड़ी ही आगे रह गयी थी।

तब वेताल ने रुककर अपने भाई से कहा—ये सब तो भय से पागल हो गये हैं। मैं आगे बढ़ूँगा तो बेतहाशा नदी में कूद पड़ेंगे। छोटे छोटे बच्चे हैं। कहीं कोई डूब गया, तो बस वेताल के सिर पर कलंक का टीका लगेगा।

वेताल एक पेड़ के नीचे बैठ गया। उधर लोग सकुशल नदी पार करके वन में छिपने के लिए तैयार हो गये। अकेला चतरू अपने दोनों खाली हाथों को ऊपर उठाये हुये उनके पीछे ही भागा। वह बराबर चिल्ला-चिल्लाकर उन्हें आश्वासन देता जाता था।

वन के पास पहुँच कर सबने समझा, जैसे किले का दरवाजा पा लिया। जब पीछे देखा तो मालूम हुआ कि वेताल नहीं है। चतरू दोनों खाली हाथ उठाये आ रहा है।

स्त्री बच्चों को सुरक्षित करके वे चतरू के आक्रमण का बदला देने को तैयार हो गये, पर यह देखने लगे कि उसका उद्देश्य कैसा है?

जब चतरू उनके करीब पहुँचा, तो उसने कहना आरम्भ किया—ठहरो ठहरो कुछ डर नहीं है।

तब कहीं वे ठहरे। चतरू जब उन्हें मिला तो वह एक एक को अच्छी तरह सुनाने लगा—वाह! पुरोहित काका जी अच्छा

गोहत्या का पाप सिर पर थोपे जाते थे। ऐसे भागे कि किसी की सुनते ही नही।—फिर मुखिया तेजसिंह से कहा—चचा आपको तो सोचना चाहिये था, कि सारे गॉव मे हम अकेले रहेंगे।—वाह! वेताल न हुआ एक राक्षस हो गया। राम-राम! सब को विश्वास कैसे आया? बच्चे-बच्चियों और औरतों सब को परेशान कर डाला। उधर पेड़ के नीचे सब लोग देखो, वेताल अपनी कठोर प्रतिज्ञा पर रो रहा है। सचमुच रो रहा है; कि उसने तमाम लोगों को कितना परेशान कर डाला।

थोड़ी देर मे वेताल भी सब से जा मिला उस समय आनन्द का एक अपूर्व दृश्य देखने मे आया। लोग थक तो गये थे पर शाम होने से पहले सब गॉव मे सकुशल पहुँच गये। लोगो को अपनी भूल पर बड़ी शरम आई।

रात को सोते समय वेताल को यह ख्याल नहीं आया कि वह मर जाता तो क्या होता, बल्कि यह आया कि अगर लोग गॉव में वापस न आते तो कैसा होता?—इस विचार से उसका हृदय हिल गया। उसकी ऑखों के सामने सूने गॉव की भयानक सॉय-सॉय का चित्र खिंच गया।

दूसरे दिन वेताल का नाम गढ़वाल की सीमा पार कर चुका था।

उसकी वह अपूर्व बहादुरी सब को अब तक याद है, पर उससे भी अधिक याद है लोगों का गॉव छोड़ कर भागना। सब मन ही मन जानते हैं कि कई पीढ़ियों तक उनकी कायरता की वह कथा भुलाई नहीं जा सकेगी।



कलह का अन्त

(१)

महाभारत के महासंग्राम का बीज केशों की कथा में है। वीर हृदयों की उर्वरा भूमि मे उसके द्वारा समय पाकर भीम काय सजीव वृक्ष की सृष्टि हुई। उस के ताण्डव-नर्तन में विराट विश्वकी चिर सञ्चित पुरातन रूप-रेखा प्रलय की अनन्त जलराशि मे एकाकार हो गई। जिसने ऐसे भयङ्कर विस्फोट को जन्म दिया, उसकी इतना महिमा ठीक ही है।

वह बडे लोगों की बात थी, इसलिए बड़ा हलचल मचा। उन राजघराने के साथ भूमण्डल की जातियों का स्वार्थ-सम्बन्ध था, इसलिए भी उस का असर सर्वव्यापी हुआ। कुछ वैसी ही बात बेनी सुनार और उसके मामा के लड़के हीरा के बीच भी हुई। पुरखों के समय का लगाया हुआ आत्मीयता का बाग गुस्से की बहिया मे प्रवाहित हो गया—देर न लगी। मिले हुए बारह बीघा के विस्तृत घर मे दीवालें उठ गई। लेकिन कलह दीवारों से रोक रखने की वस्तु नहीं है। उसने खींच खींच कर दोनों को भिडाया। गाली-गलौज, हाथा-पाही, डण्डालाठी किसी की भी कसर न रही। सिर फूटे, लासें बिछीं, कचहरी अदालत हुई—और हुआ क्या नहीं, फांसी, सजा सब कुछ हुई। जो गांठ एक दिन पड़ गई थी, वह अब भी पुरवाई हवा चलने से कलक उठती है। जैसे भरा हुआ घाव फूट पडता है, जैसे दबा हुआ ज्वालामुखी फट पड़ता है और जैसे दुखा हुआ हृदय उमड़ पडता है, वैसे ही कभी २ अब भी उन दोनों परिवारों के गुबार निकल जाते हैं।

कुएँ पर पानी भरते समय जब हीरा के भाई की नवोढ़ा वधू खड़े खड़े थककर चलने लगती तब बेनी की घरवाली अपनी पडोसिन को सुनाकर कहने से नहीं चूकती—रस्सी जल गई, लेकिन ऐंठन नहीं गई। ऐसी ठसकवाली को कुँए पर अपनी एक रस्सी नहीं डलवा देना चाहिये ?

इतना कह देने से वह कभी बाज तो नहीं आती, पर वहाँ फिर खडी भी नहीं रहती। बहुत देर से भारी होने के कारण जिस घडे के निकलने की सम्भावना नहीं होती, वह भी तुरन्त निकल आता और वह अपने घर के भीतर चली जाती। युवती विधवा की आह के डर से नहीं, बल्कि हीरा की शेरनी की दहाड के डर से।

जब किसी बात की लगन होती है तो आँखो की ओट होजाने से ही काम नहीं चलता। बुझी हुई छुरियों के घाव आह को दबा कर सह लिए जा सकते हैं, लेकिन प्रतिद्वन्दी की मर्म पूर्ण चोट को बिना उत्तर के नहीं जाने दिया जाता। यह मानव-स्वभाव की बात है।

हीरा की स्त्री कुँए पर आकर चारो ओर पुकार कर कहती—अरे! वह रस्सी पर अधिकार जतानेवाली कलमुँही कहाँ चली गई ? मैं भी तो देखूँ कि कब उस के खसम ने रस्सी खरीद कर रक्खी है ?

तब बेनी की गृहिणी से रहा न जाता। वह यह कहकर निकल आती—अरे! तेरी जीभ पर पत्थर पडे। अभी तक तेरे मन की आग नहीं बुझी है।

फिर क्या, उन दोनो में खूब बजती। एक दूसरी को शक्ति भर जली कटी सुनाती। स्त्री-पुरुषों की इस मन-मैली का असर ज़हर की तरह उन परिवारों की नस-नस में सिद गया था। छोटे छोटे बच्चे भी परस्पर घृणा और क्रोध के भाव से ओत प्रोत थे। उनका वह आत्मीयता का सम्बन्ध जल कर खाक हो चुका था।

[२]

इस अलगाव का मूल कारण विशाल वट के बीज से भी छोटा है जैसे बालू के छोटे छोटे कणों पर किसी विशाल भवन को खड़ा किया हो, उसी तरह महज़ मामूली बात पर परस्पर का नाता काफ़ूर हो गया था।

कई साल पहले पूरन नाई ने बेनी से एक सौ पचीस रुपया लेकर दस्तावेज लिख दी। उस की मियाद खतम हो रही थी। बेनी ने उसे बुलाकर कहा—अभी आठ दिन हैं इसी बीच में रुपया का कुछ न कुछ इन्तज़ाम कर लेना।

पूरन ने उत्तर दिया— इस वक्त तो मेरे किए कुछ होता नहीं। अगली फसल तक ब्याज और आधा रुपया चुका देने की हामी मैं भर सकता हूँ। अभी कागज़ बदल कर किसी तरह काम चलाओ।

बेनी ने चलन की बात बनाकर कहा—समय पर काम निकाल देने से ऐसा ही होता है। तुम्हे दोष नहीं है। तुम्हारे काम का मैंने ख्याल किया, मैं मूरख बन गया। अब भला तुम्हे क्या पड़ी है, कि किसी की तंगी समझ सको। मेरे यहाँ भी रुपये की खान नहीं है। एक से लेना दूसरे को देना, इसी तरह कारबार चलता है।

पूरन—तुम्हारा रुपया चलेगा तो ब्याज ही पर, मैंने लिया तो, किसी और ने लिया तो।

बेनी—यह अच्छी कही। यही बात है तो मैं ब्याज पर देना ही नहीं चाहता। तुम किसी न किसी तरह मियाद के भीतर ले आओ, नहीं तो फिर मैं कहे देता हूँ, अदालत होगी।

पूरन—कागज तो लिखा हुआ है, फिर भी उसे बदलवालें। मैं रहूँगा तो बस्ती में ही।

बेनी ने बहुत कड़ाई से कहा—नहीं, मैं मान नहीं सकता, जाओ चाहे जो करो। रुपया देना होगा।

पूरन चला गया। बेनी ने समझ लिया कि रुपया कहाँ से इतनी जल्दी आसकता है। झट नालिश ठोंक दी। मुक़दमा हुआ ब्याज समेत ढाईसौ की डिगरी हुई। एक की जगह दो खर्च करके कुड़की निकलवाई। मौरूसी जायदाद, गाय, बैल सब बोली पर चढ़ा दिये गये। उसी समय सब की सम्भावना के विरुद्ध पूरन ने लाकर थैली खोल दी, और खनाखन चेहरासाई गिना दिये।

बेनी को रुपया पाकर भी बड़ी भारी क्षति और ग्लानि का अनुभव हुआ। वह बारम्बार पछताने लगा कि जल्दी करने से काम बिगड़ गया। आई हुई जायदाद निकल गई। पर रुपया दिया किसने ? उसके पास तो इतना हो भी नहीं सकता।

बेनी लौट कर जब घर आया तो हीरा ने हुक्का पीते हुए पूछा—कहो क्या निबटा ? कुड़की हो गई क्या ?

कहाँ। उसने रुपया चुका दिया—कहकर बेनी ने जो आशा की थी वे मनोभाव बिलकुल ही हीरा के चेहरे पर न थे। बेनी ने सोचा था कि वह भी आश्चर्य से चकित हो जायगा, पर हीरा ने बिलकुल गम्भीरता से कहा अच्छी बात है टंटा पट गया। हमारा भी ऐसा ही विचार था।

जिस खेत पर बेनी की दृष्टि थी, वह हाथ न लगा। इसी के सोच मे वह विवेकबुद्धि खो बैठा था, इसलिए हीरा की साधारण बात पर भी उसे सन्देह होने लगा। उसने सोचा, शायद हीरा ने ही मदद कर दी होगी। नहीं तो वह पहले से किस तरह जान सकता है। अगर ऐसा न होता तो क्या वह इतना भी न पूछता कि पूरन इतना रुपया लाया कहाँ से?

इसके बाद और भी छोटी छोटी बातें हुई, जिनसे बेनी का विश्वास पक्का हो गया। उसने इधर उधर चर्चा की। हीरा ने भी सुना। दोनों ओर से खिचाव और मन-मैली होने लगी। यही नहीं, वे गुत्थियाँ बहुत समय तक भीतर ही भीतर जकड़ती रहीं और एक दिन जब हीरा के घर मे बहुत से मेहमान आये हुये थे, ब्याह की तैयारी थी तो बेनी की लड़की और हीरा की बहिन मे कुछ कहा सुनी होगई। लडकी उठकर घर चली गई। बेनी ने सुना तो आग हो गया। तुरन्त आकर हीरा की बहिन को, जो उसकी भी बहिन ही होती थी, सैकडों गालिया सुना डालीं। हसी-खुशी के घर मे विरोध और रोना धोना होने लगा। हीरा की बहिन अपनी गाडी जुतवाकर बहुत रोकने पर भी घर लौट गई।

बरात के कारण हीरा अपमान का घूंट पीकर रह गया। चौथे दिन ही खुल्लम खुल्ला युद्ध हुआ। खूब मार-पीट हुई। थाने मे रिपोर्ट हुई।

बाद को तो बात बात में लाठियां चलने लगीं। जैसे उनमें से कोई खेत चरा लेने वाले को गाली देता तो दूसरा अपने ऊपर ही समझ कर उबल पडता।

[३]

हीरा को बुढिया माँ बहुत समझाती, मना करती कि आपस का विरोध तबाही का कारण होता है, पर वह किसा तरह अपने हृदय को साफ न कर पाता। उसे बेनी की बात बात मे दुश्मनी का आभास मिलता। कभी कभी वह कोशिश भी करता, पर तुरन्त ही कोई न कोई नया उत्पात खडा होकर उसकी सद्भावना को निर्मूल कर देता। फिर उसी तरह अग्नि की ज्वाला प्रचण्ड वेग से दहकने लगती।

हीरा ने आकर अपनी माँ को सारा हाल सुना कर बतलाया। सब शरारत उसी बेनी की है। उसी ने डिप्टी साहब से मिल कर बखेडा खड़ा कर दिया है। मैंने उन्हें अच्छी तरह समझाया कि साहब हम गरीब आदमी है। इन्कम्टैक्स देने लायक हमारी आमदनी नहीं है। लेकिन उन्हें तो पहले से ही ऐसा पढ़ा दिया गया है कि किसी तरह बात ही नहीं सुनते।

माँ ने हीरा से कहा– अगर मेरी सलाह पहले से ली होती, तो इस जञ्जाल की जड ही न कट जाती ? बेनी को तब किसी से कुछ कहने की जरूरत ही न होती।

हीरा ने बहुत उत्तेजित होकर बतलाया—मैं तो उसकी करतूत बतलाता हूँ। मुझको इसकी कुछ भी परवाह नहीं है। ऐसा बदला बच्चू से लूँगा कि दाने दाने को मोहताज हो जावे। कल ही हुसेन मुहम्मद को बुलाकर खेत जोत लेने को कह दूँगा।

फिर देखूँ, कौन उसके पास फरियाद लेकर जाता है। उजरदारी के बाद अगर मेरे ऊपर वीस—पच्चीस रुपया बॅध भी गये तो क्या। इसे तो मैं बस्ती मे ठहरने लायक नहीं रक्खूँगा।

मा ने अपने निर्वल और वृद्ध शरीर को चारपाई पर बड़ी कठिनाई से उठाकर कहा—हीरा ! तुम पछताओगे। बेनी कोई गैर नहीं है। आदमी को तो औरों को अपना बनाना चाहिये, तुम अपनों को गैर बना कर भी सुख चाहते हो।

हीरा ने झुँझलाकर कहा—मैं ही सदा गलती करता हूँ, क्यों न ?

माँ- गलती वही करता हो सही, पर करने का मौक़ा कौन देता है ?

बहुत विवाद न करके हीरा चुपचाप वहाँ से चला गया। उसने समझ लिया कि माँ को ठीक परिस्थिति की समझ नहीं है।

हीरा की दुबारा पेशी हुई, और उसके ऊपर सचमुच टैक्स बॅध गया। उसी दिन शाम के समय उसने हुसेन मुहम्मद के मकान पर जाकर बुलाया। दोनों ने बड़ी देर तक बैठकर काम काज की बातें कीं। नदी के कछार मे बेनी का जो खेत था, हुसेन मुहम्मद ने रातोंरात उसे काट कर अपने घर मे भर लिया।

हीरा ने इसे जितना सहज समझा था, वह उतना ही मुश्किल हो गया। बेनी ने फौजदारी में उठा कर नालिश करदी।

उसे बैल ने जो सींग मार दिया था वही डाक्टरी होने पर छुरी का घाव साबित होगया। हीरा के ऊपर विपत्ति की घटा घिर आई। एक साथ ही कई दफाएँ लगाई गई।

बहुत पैरवी की गई, पर वह बरी न होसका। उस को सात साल की सजा हो गई।

बेनी ने खेत का नुकसान सह कर भी इस विषय पर खूब आनन्द मनाया। जब हीरा के घर मे आँसुओं की नदी बहाई जारही थी, तब वह घी का चिराग जलाकर अपने पुरुषार्थ और परिश्रम पर गर्व कर रहा था। अपने मनुष्यत्व की सार्थकता के सामने धूल में मिली हुई गृहस्थी क्षण भर के लिए उसे नन्दन-निकुञ्ज से बढ़ कर समझ पड़ती थी।

[४]

बेनी की क्रूर हँसी शायद इसी दिन के लिए दबी थी, प्रातःकाल वह ज्यों ही सोकर उठा—उठा कहाँ, हीरा के घर के कुहराम से उसकी आँखें आप ही खुल गई, मालूम हुआ हीरा की बुढ़िया माँ चल बसी है। छोटा लडका अन्तिम घडियाँ गिन रहा है। उसके दबे हुए होठों मे हँसी की भयङ्कर छाया बिजली की तरह खेल गई। उसने सोचा क्या यही सब से बडी विजय है? साथ ही उसका हृदय एक आशङ्का से हिल भी गया, पर हीरा के छूटने को एक युग पडा था। उसने सन्तोष की अगडाई ली और उठ कर तमाशा देखने चल पडा।

उस दिन उसके क्रूर परिहास को विधाता ने किस रजिस्टर मे लिखा, पता नहीं। अदृष्ट के हाथ मे क्या है, यह कौन जाने?

वैसे प्रगट में तो उसकी विजय का दूसरा अध्याय बड़े समारोह से पूर्ण हुआ।

खैर, वह दिन भी किसी तरह वीत गया। आगे जो अवसर द्वार पर झाँक रहा था, वह और भी मर्मस्पर्शी था। समस्त विश्व की क्रूरता और करुणा एक साथ गले मे हाथ डाल कर मनुष्य के पतन का पर्दा उठाने आई थी। अपने अञ्चल की शोभा को चिता मे सुला कर जव हीरा की स्त्री लौटी थी, और उस कलह-जर्जर घर को ताले से वन्द करके घर की अन्य स्त्रियों के साथ वह अपने पिता के घर जा रही थी, तो वेनी ने विजय का अन्तिम अध्याय समाप्त करने के इरादे से व्यंग्य किया—क्यों भाभी! पैदल ही जाओगी क्या? गाड़ी नहीं है?

इसका उत्तर उस सर्वस्ववञ्चिता अवला ने तो कुछ नहीं दिया, लेकिन शायद ब्रह्मा ने इसे भी नोट कर लिया था।

अव तक विजय का जो अपरिमित भार वेनी के कन्धों पर लदता जारहा था, मालूम पडता है उसका जरा जरा हिसाव कोई रखता जाता था। उसके अनेक वार किये गये गर्व का खर्व करने की कोई चुपचाप तय्यारी कर रहा था।

पाचवाँ साल भी पूरा नहीं हुआ था कि हीरा छूट गया। उस दिन वेनी को भोजन नहीं रुचा। अज्ञात आशङ्का से हृदय दहल रहा था, लेकिन क्या हीरा को कुछ रुचा था? वन्द घर के सुनसान द्वार पर वैठ कर जेलखाने से मुक्त होने की खुशी मनाई थी? क्या उसके हृदय मे अग्निशिखाएँ नहीं उठ रही थीं?

काली रात थी। लड़के की बीमारी बढ़ गई थी। वेनी बैठा सोच रहा था--क्या मेरे भाग्य मे भी हीरा के इतिहास की पुनरावृत्ति अङ्कित है ?

उसका हृदय अपने कामों पर शोक, पश्चाताप और घृणा से परिपूर्ण हो गया। वह अपने अमानुषिक आचरण पर अपने ही नज़दीक कई बार मर-मर गया। स्त्री पास ही बैठी पुत्र के कष्ट से शोकाकुल होरही थी।

वेनी को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे अनन्त अपराधों की ही उसे यह सज़ा मिल रही है। उसका मन वारवार व्याकुल होने लगा। अगर कहीं हीरा उसे मिल जाता, तो आज वह उसके निकट अपराधों की क्षमा माँग लेता, लेकिन वह तो उसी दिन आते ही न जाने कहाँ चला गया। वेनी अनन्त जलराशि मे गिर कर गोते खाने लगा। फिर स्त्री की सजल आँखों को वरदाश्त न करके उठना ही चाहता था, कि सामने से सारा घर जल उठा। स्त्री चिल्ला पड़ी, वह क्षण भर को हतबुद्धि-सा हो गया। बाहर जाने का मार्ग वन्द था। वह झटपट कूद कर छत पर चढ़ गया, और अपने प्राणों की परवाह न करके कूद पडा। उधर ही से आग लगाकर कोई भागा जा रहा था। वेनी ने तेज़ी से दौड़कर अपराधी को पकड लिया, और अपने शरीर को उसके पैरों पर डालकर कहा—मुझे क्षमा करके जाना होगा। यह आग क्या है, इसमे जल कर तो मै अनन्त शान्ति पाजाऊँगा। मैं वास्तव मे दुखी हूँ उस भीषण अन्तर्ज्वाला से, जो तिल तिल कर जला रही है। कह दो तुमने मुझे क्षमा किया,

बस, तुम्हारे दिये हुए इसी अग्निरूपी प्रसाद को मैं पान कर जाऊँ।

हीरा की आँखों मे स्नेह के आँसू उमड़ आये। उसने एक बार समस्त वैमनस्य भुलाकर वेनी के लथपथ शरीर को गले लगा लिया और छत पर चढ कर स्त्री बच्चों को निकालने लगा।



रज़ाई ने क्या कहा

एक सौदागर खुले हुए दरवाज़े के सामने ज्यों ही पहुँचा, त्योंही एक ठिगने जापानी सरायवाले ने चिल्लाकर कहा—आइए महाशय, आइए अन्दर ! आपका सहर्ष स्वागत !

सौदागर अयाचित स्वागत को अस्वीकार न कर सका। एक बार अपनी आराम और सुविधा को देखने के लिए सराय मे चला गया।

अब तक एक भी मुसाफिर इस सराय मे कभी नहीं ठहरा था। उसी दिन पहले पहल वह सराय खुली थी। कुछ बहुत ठाटबाट भी न था। औव्वल दर्जे की उसमे कोई सजावट भी न थी। होती भी किस तरह ? सरायवाला बेचारा तो गरीब था। फ़र्श की चटाइयां, दीवार के लैम्प, मेजें और बर्तन सभी कबाड़खाने से खरीद कर लाये गये थे। उस सजावट में हाथ की तंगी अच्छी तरह झलक रही थी, तो भी हरएक चीज़ करीने से रक्खी थी। सफाई की तरफ मालिक का, मालूम पड़ता है, विशेष ध्यान था। बस, इसी से वह जगह सौदागर को पसन्द आगई। उस दिन उसने खूब आनन्द से खाया-पिया और पड़कर सोगया।

जापान में लोग चारपाइयों पर नहीं सोते। वे चटाइयों पर बिछे हुए गद्दों पर पडे रहते हैं और ऊपर से रज़ाइयां ओढ़ लेते हैं। रज़ाइयों और गद्दों मे रुई भरी रहती है। अमीर आदमी सरदी से बचने के लिए अधिक तादाद मे रज़ाइयों काम में

जाते है। गरीब थोड़ी में गुजर करते हैं। अगर कोई बहुत अमीर हुआ तो उसकी रजाई आठ फुट लम्बी और सात फुट चौड़ी होगी। दिन में ये रजाइयां परदों से ढकी अलमारियों में बन्द करदी जाती हैं। इन्हीं आलमारियों में लकड़ी के तकिये भी जमा रहते हैं। सोते समय लोग उन पर इस तरह से अपना सिर रख लेते हैं कि उनके अच्छी तरह सँवारे हुए केश अस्त-व्यस्त न हो जायँ। अगर कोई तकिया जमीन पर गिर पड़े तो जापानी स्त्री-पुरुष, कोई भी उसे पैर से स्पर्श न करेगा। अगर पैर लग ही जाय तो वह उसे उठाकर मस्तक से लगाएगा और भूल के लिए पश्चाताप करेगा।

हां तो, वह सौदागर सोया ही था कि कमरे में एक आवाज सुनकर वह जाग पड़ा। दो लड़के बोल रहे थे।

"दादा, तुम्हें शीत लगता है ?"

"और भैया तुम्हें भी लगता है ?"

सौदागर ने सोचा सरायवाले के दो लड़के भूल से कमरे में आगये हैं। हो भी सकता है, क्योंकि जापान की सराय के कमरों में दरवाजे नहीं रहते कि बन्द किये जा सकें। सिर्फ कागज के परदे पड़े रहते हैं जो निकलने के लिए इधर उधर सरका दिये जाते हैं।

सौदागर ने कहा—भागो, भागो, बच्चो। यह तुम्हारा कमरा नहीं है।

कुछ देर तक निस्तब्धता रही। उसके बाद फिर वही आवाज सुन पड़ी।

"दादा, तुम्हें शीत लगता है ?"

"और भैया, तुम्हें भी लगता है ?"

सौदागर उठ बैठा। दीवार मे कागज की लालटैन लगी थी उसके अन्दर की मोमबत्ती को जलाया। बच्चे कहीं न दिखाई दिये। अलमारियों मे झाँका वहां भी नहीं। मोमबत्ती बलती हुई छोड़ कर वह लेट गया। फिर वही—

"दादा, तुम्हे शीत लगता है ?'

"और भैया, तुम्हे भी लगता है ?"

आवाजे एक रजाई से आरही थीं। उसे निश्चित होगया। झटपट उसने अपनी चीजों को लपेटा, नीचे आगया और सराय वाले से सब हाल कहा।

सराय वाले ने नाक-भौं मिकोड़ कर जवाब दिया-ज्यादा पी गये होगे। उसी से बुरे सपने हुए। मेरी रजाइयां बातें नहीं करतीं।

सौदागर ने कहा—एक तो अवश्य करती है और तुम इस तरह आंखें दिखाते हो। बस, मै तुम्हारे यहा नहीं ठहरूँगा। मैं तुम्हारे पैसे देकर रवाना होता हूँ।

वह चल दिया।

दूसरे दिन दूसरा मुसाफिर रात को ठहरने के लिए आया। उसने खाने के साथ शराब भी नहीं ली थी लेकिन उसे कमरे मे गये ज़रा ही देर हुई थी कि वह नीचे आगया और सरायवाले को

बतलाया। आपकी रजाइयों मे से एक से आवाज निकलती है—

"दादा, तुम्हें, शीत लगता है ?"

"और भैया, तुम्हे भी लगता है ?"

सरायवाले ने आगबबूला होकर कहा—वाह जनाब, आपको मैंने कितने आराम का तो कमरा दे दिया है, तिसपर आप मुझे मूर्खतापूर्ण बातें सुनाकर परेशान करते हैं।

"मूर्खतापूर्ण ? जी नहीं—मै बिल्कुल सच कहता हूँ। एक रजाई मे से निश्चय ही मैंने दो लडकों की आवाज सुनी है। मैं इस जगह नहीं ठहरूँगा।"

[२]

जब दूसरा मुसाफिर भी चला गया तब सरायवाला ऊपर गया और एक एक करके रजाइयों को उठाया। उसी समय एक मे से सुन पडा—

"दादा, तुम्हें शीत लगता है ?"

"और भैया, तुम्हे भी लगता है।"

वह रजाई को अपने कमरे मे लेगया और उसे ऊपर डाल कर लेट रहा। सारी रात दो बच्चों की वही बातचीत सुनाई देती रही।

सुबह होते ही सरायवाला कबाडी की दूकान पर गया और उससे पूंछा—तुम्हें याद है, तुमने मेरे हाथ एक रजाई बेची थी ?

"जरूर।"

"उसे तुम कहां से लाये थे?"

"इसी शहर में उस तरफ एक छोटी सी दुकान है, उसी पर से लाया था।"

सरायवाला तुरन्त उस दुकानवाले के पास दौड़ा हुआ गया। उसके बाद जहाँ से उसने ख़रीदी थी वहां पहुँचा। इस तरह अन्त मे उसे मालूम हुआ कि एक मकान मालिक ने उसे बेचा था।

उस छोटे से मकान मे एक गरीब परिवार रहता था—एक पिता, एक माँ, दो बच्चे। पिता बहुत थोड़ा पैदा कर पाता था। माँ बीमार रहती थी। वह मदद नहीं दे सकती थी। एक लड़का आठ साल का था और छोटा छः साल का। शीतकाल मे पिता बीमार पड़ मर गया। माँ भी मर गयी। दोनों बच्चे मकान में अकेले रह गये। उनका कोई सहायक नहीं था। वे बिल्कुल निरवलम्ब और निराश्रय थे। पहले एक, फिर दूसरी, फिर तीसरी—इस तरह सब चीज़ें वे बेचकर खागये। कुछ नहीं, सिर्फ एक रज़ाई बच रही थी।

[३]

बाहर ख़ूब बर्फ़ पड़ रही थी। शीत था कि मृत्यु। एक रज़ाई के भीतर दो भाई खूब लिपटे हुये पड़े थे। छोटे भाई ने कहा—

"दादा, तुम्हे शीत लगता है?"

"और भैया तुम्हे भी लगता है?"

वे ही दोनों आवाजें रजाई के अन्दर रुई की तह में प्रवेश कर गई थीं और तब से बराबर उसी में गूँज रही थी।

मकान मालिक गुस्से से लाल हुआ चेहरा लिये पहुँचा और बच्चों को सोते से जगा दिया।

"मकान का किराया दो।"

"हमारे पास तो कुछ नहीं है, बाबा।"

"अच्छा, तो जाओ। मैं यह रजाई बदले में रक्खे लेता हूँ।"

"बड़ी सर्दी है। मर जायेंगे, बाबा।"

"मर जाओ।"

रजाई छिन गई। वे दोनों पतली-हलकी एक-एक कमीज पहिने थे—बस। और सब कपड़े तो पहले ही बिक चुके थे। वे मकान से भी निकाल दिये गये। पड़ती हुई बर्फ में, मकान के पिछवाड़े, वे दोनों एक-दूसरे के बहुत पास-पास जमीन पर पड़ रहे। थोड़ी देर में स्वच्छ निर्मल और चमकीली बर्फ की तहों ने उन्हें आच्छादित कर लिया। उनके अवयव सुन्न होगये। शीत अब उनके लिए शीत न था। वे चिर-निद्रा में सोगये।

कोई उधर से निकला। वह उन्हें उठाकर ममतामयी करुणा-देवी के मन्दिर में ले गया। जापानी मन्दिर में करुणादेवी की प्रतिमा ममता के भाव से ओत-प्रोत सहस्र भुजावाली होती है। कहा जाता है कि इस देवी के लिए स्वर्ग के समस्त द्वार खुले हुए थे, लेकिन वह गई नहीं। उसने कहा, मृत्युलोक में जो असंख्य परितप्त आत्मायें दुःख और यातनाओं में छटपटा रही

मेरी वहियाँ पै सोवै नँदलाल

मेरी गाडी सॉभरझील स्टेशन छोड़ चुकी थी। प्रातःकाल की शीतलता अभी तक वायु से अलग न हुई थी। सूर्य की किरणे खिडकियों से झॉक रही थीं। मैं उनकी उपेक्षा सी करके दूरतक फैले हुए झील के विस्तार की ओर एकाग्र हो रहा था।

उस सुन्दर समय मे भी झील के जल की रक्तिम झलक मे न मालूम क्यों मैं प्रकृति के षडयन्त्र की वातें सोचने लगा। स्वस्थ कपोलों की गुलावी झलक की उपमा मुझे न सूझी, और न उषा के अधरों की लाली को ही मैं याद कर सका। मन की तन्त्री उस समय शृङ्गार-जगत से दूर वीभत्स भावों से ही अधिक आन्दोलित हो उठी। सोचा, कानून, न्याय और शान्ति की पुकार मचाता है। पुलिस की ऑखों से हत्या छिपायी नहीं जा सकती। मरे आम किसी जानी दुश्मन के कटे सिर से भभकते हुए खून के फव्वारे को देखकर जी नहीं प्रफुल्लित किया जा सकता लेकिन यहॉ सव कुछ संभव है। वूँदों नहीं घडों खून वहाओ, प्रकृति रहस्य का पर्दा-फाश न करेगी। सव कुछ छिपा लेगी। न शरीर रहेगा न खून। सव नमक वन जायगा, सव लाल आभा में परिणित होजायगा।

यही क्यों तुरन्त प्रतिभासित हुआ कि मेरा यह मौलिक विचार अनेक वार लोग पूरा कर चुके है। अनेक हृदयहीन क्रूरताओं का अभिनय चुपचाप इस जलराशि की लहरों पर

वहीं पास ही एक अकाल मृत्यु को प्राप्त हुए हिन्दी के एक होनहार लेखक भी सिसकियाँ भरभरकर गुनगुना रहे थे—दुनियाँ अन्धी है। लेखकों के पास धन कहाँ? उजले कपडों मे ही सदा धन नहीं रहता, पर लुटेरों को कौन समझाये? मैले चीथड़ो की आड मे एक मारवाडी सेठ कितना सोना बचा ले गये, पर बाबूगीरी के ठाठ मे मारा गया मैं। हृदयहीनों ने ज़रा भी नहीं सोचा कि मैं क्या क्या लिखनेवाला था? यद्यपि छपे नहीं और छप भी शायद न सकेंगे पर मेरे काव्य क्या मिल्टन और कालिदास से कम है? डी० एल० राय के नाटक मेरी नाट्य-रचना के आगे कौडीकाम के नहीं। उपन्यासों मे भी मेरी लेखनी की क्षमता संसार-प्रसिद्ध होती, पर हाय यह हुआ क्या? ठीक ही हुआ, हिन्दी-संसार गुणग्राही भी कहाँ है? जिसके चार प्रशंसक मित्र हैं वह लेखक है, और लेखकों की नाक है। जिसने मिलनसार तबियत नहीं पायी है, वह अच्छा लिखकर भी लेखकों की पंक्ति मे नहीं बैठ सकता। अंग्रेजी-संसार ने कीट्स के मरने पर तो उसकी कद्र की, लेकिन मेरे मरने के बाद भी हिन्दी-ससार का मेरा पता न चलेगा।

× × × ×

अभी अनेक दुखिया अपनी अपनी आत्मकथा के पन्ने उलट ही रहे थे, कि एकाएक मेरा ध्यान भंग होगया। मेरे डिब्बे की एक सीट पर से एक ग्रामीण युवक अपनी बुलन्द आवाज से गा उठा, "मेरी बहियो पै सोवै नॅदलाल, कलैयो मेरी मरकि गई।"

इस अधिक स्पष्ट आवाज़ ने मेरे अन्तःकरण के आन्दोलन को स्वप्न की लकीर की तरह मिटा दियो। धूप के उष्ण स्पर्श ने

गाना खतम होगया। कोमल कंठ-स्वर थम गया। जोधपुर रेलवे की मुसाफिर गाडी की खडखड कानों के परदों को फाडने लगी। दो तीन जाट और गूजर उस युवक के आरक्त चेहरे की ओर टकटकी लगा कर देख रहे थे। एक बूढा चारण भी बैठा था। वह भी जैसे मन ही मन उस युवक की प्रशंसा कर रहा था; यद्यपि उसके पूरे गीत का भाव वह अच्छी तरह समझ न सका था। एक गुजराती महाशय अपनी [illegible]यों के साथ उसी डिब्बे में दूर बैठे थे। गाना उन्हें भी उस युवक के पास खींच लाया था।

उस युवक के साथ उसी की अवस्था के दस-पन्द्रह और युवक भी थे। सब ब्रजमंडल के रहनेवाले थे। कहाँ जा रहे हैं अभी तक पता न था। सब हँस मुख थे। सब जिंदादिल थे। सब चुहल पसन्द थे। उनकी वजह से डिब्बे मे भी जीवन आगया था। कुछ बुड्ढों को उनका परिहास पसन्द न था, पर उनकी सुनता कौन?

वे सभी गाना जानते थे, पर पूर्वोक्त युवक तो बिलकुल वीणा के स्पंदित तार की तरह था। गुनगुनाना या अलापना ही उसे भला मालूम पडता था। गाडी स्टेशन पर रुकते ही वे सब के सब उतर जाते, इधर उधर टहलते और फिर चढ़ आते। मेरा ख्याल हुआ सब बगैर टिकट हैं पर ऐसा न था।

एक स्टेशन पर उनमे से एक चलती गाडी पर चढने से गिर गया। उसका सिर फट गया। एक दो इंच गहरा घाव होगया। गरीबों की ऐसी मामूली चोट की परवाह रेलगाडी नहीं करती। गाडी ठहराकर उनकी खबरगीरी करने का ठेका कोई गार्ड या ड्राइवर ले तो वह मूर्ख। हमारी गाडी उड चली। चोट खाया

के हाथ में देते हुए बोले—इन सबको अपने साथ ले जारहा हूँ। पलाना की कोयले की खदान में ये लोग काम करेंगे।

बाबू चुपचाप टिकट देख रहा था। मियाँ साहब कहते गये—यह जो गा रहा है। काम में बड़ा होशियार है। एकबार साहब ने खुश होकर इसे पाँच रुपये इनाम दिये थे, और यह जिसके चोट लग गई है पहले कभी घर से बाहर नहीं आया था।

बाबू के चले जाने पर मेरी उत्सुकता देखकर वे मेरी ओर मुड़कर बोले—ये सब काफ़ी पैदा कर लेते हैं जनाब!

मैंने पूछा—क़रीब क़रीब कितना?

मियाँ साहब—पन्द्रह-बीस रुपये महीने से कम नहीं।

मैं—यह तो बहुत नहीं है, और फिर खान का काम। वहाँ जान का भी तो कभी-कभी ख़तरा रहता है।

मैं उतर रहा था। मियाँ साहब भी मेरे साथ उतरते हुए धीरे से बोले—जी हाँ, खतरा तो हरवक्त रहता है। इसी से तो मैं इधर उधर दौड़ते रहने पर भी आदमी पूरे नहीं जुटा पाता।—कुछ दिन पहले की बात है साहब! मैं एक दूसरी खान में यही काम करता था। एक धड़ाके में मेरे लाये हुए कई आदमी दब गये थे। यह बड़ी जोखों का काम है। कुछ दिन पहले ...

मेरा कुली असबाब लेकर चल पड़ा और उधर गाड़ी भी चल पड़ी। मियाँ साहब की बात पूरी नहीं हुई। मैंने चलती गाड़ी के डिब्बे में झाँककर देखा, वह युवक अभी तक झूम झूमकर गा रहा था, "मेरी बहियाँ पै सोवै नँदलाल, कलैयाँ मेरी मरकि गई।"

को नींद खुल जाती है और सुन पड़ता है, "मेरी वहियाँ पै सोवै नँदलाल, कलैयाँ मेरी मरकि गई।"

कोई बाहर बरामदे मे से ही गा रहा है। धीरे-धीरे स्वर स्पष्ट होगया। नींद की लहर चली गई है। आधी रात की निस्तब्धता मे स्वर बल खाता हुआ चारों तरफ घूम रहा है। मुझे लगता है, मैंने गीत कभी सुना है। लेटे लेटे ही स्मृति पर जोर देता हूँ। याद आता है, दो-ढाई वर्ष पहले रेल मे यही गीत सुना था। दिल्ली से ही तव भी आरहा था। ब्रज की वह युवक-मंडली साथ थी। सारा चित्र एक वार आँखों के सामने मूर्तिमान हो जाता है।

गीत अब भी गाया जा रहा है। गीत तो वही है। स्वर मे भी कुछ कुछ साम्य परिलक्षित होने लगा है। तो क्या वही युवक आज मेरी छत के नीचे अतिथि बना है ? मैं तुरन्त टॉर्च उठा लेता हूँ और धीरे से दरवाजा खोलकर वरामदे मे जा पहुँचता हूँ। बाहर पेड की छाया मे कोई पडा गारहा है। मैं पास चला जाता हूँ, पर यह तो वह युवक नहीं है। एक झुर्रियोंवाला चेहरा है। उमर का ठीक-ठीक अन्दाज़ नहीं लगता। एक पैर भी घुटने तक कटा हुआ है।

मैंने पूछा—कौन हो, वावा ?

आदमी—कहकर वह उठकर बैठ गया। फिर वोला—अपने लायक कुछ काम चाहता था। खर्च निवट गया। मुझे बहुत दूर जाना है।

मैंने रोशनी उसके चेहरे पर अच्छी तरह डालकर कहा—क्या कहां से रहे हो जी ?

"तो अब घर जारहे हो ?"

"हाँ, लौटा जारहा हूँ। लँगड़े-लूले का परदेस मे गुजारा कैसे हो ? अस्पताल के पाँच महीने पाँच बरस की तरह कटे है।"

"तुम्हारे घर पर कौन-कौन है ?"

"सिर्फ एक वृढा काका था। वह भी तीन महीने हुए नहीं रहा।"

"और कोई नहीं है ?"

"कोई नहीं।"

"तो घर जाकर क्या करोगे ?"

मेरी इस बात का उत्तर उसने कुछ न दिया, बल्कि सिसक-सिसक कर रोने लगा।

मैंने कहा—"भाई रंज मत करो। दुनियाँ मे सुख-दुख यही दो तो होते है।"

करीब आध घंटे तक उसका गला साफ न हुआ। आध घंटे बाद मैं अनुरोधपूर्वक उसे अपने कमरे मे हाथ का सहारा देकर लिवा लेगया। दूसरी चारपाई पर अपने पास ही लिटाया। करीब चार बजे तक उसकी बाते मैं सुनता रहा।

मुझे मालूम हुआ कि गाँव मे एक लडकी है। वह इसे प्रेम करती है। उसी की याद इसे खींचे लिए जा रही है।—मैंने तो कुछ नहीं कहा, उसी ने कहा—अब तो मैं जैसा हो रहा हूँ वैसे आदमी को भला कौन लडकी चाहेगी। फिर भी मैं जाऊँगा, उसे

पगली का धन

(१)

लोग कहते हैं—वह निष्प्राण था। प्राण निकल जाने पर सभी वहाँ पहुँचाए जाते हैं। शव भी कहीं घर पर रहने दिये जाते ?

मुझे मोह के कारण पगली—ममत्व के कारण उन्मादिनी बताते हैं, पर सच कहती हूँ, मुझे रत्ती भर उन्माद नहीं। मेरी चेतना बिल्कुल जाग्रत, विवेक पूर्ण रूप से वश मे है। ममत्व या मोह तो मुझे कभी हुआ ही नहीं। जिस दिन वह पैदा हुआ था उस दिन से मैंने कभी उसे अनुचित मोह के बन्धन मे नहीं बाँधा। कोई कह दे कि उसके लिये मैंने कब किसे रोका ? मैंने सबको पूरी स्वतन्त्रता दे रक्खी थी। जो चाहता उसे प्यार करता। उसके स्मित हास्य, मधुर मुस्कराहट के लिये सब लोग लालायित रहते थे। ऐसा बालक तो किसी ने पहले देखा ही न था। उसका स्वभाव, उसका रूप, उसकी लीला, उसका चरित्र इतना मनोहर और इतना आकर्षक था कि वह सबको अपनी ओर खींच लेता था। तभी तो जड-चेतन उसे चाहते थे। सभी उसकी बाललीला निर्निमेष नयनों से निहारते थे। उसके लिये मैंने कभी किसी को नहीं रोका। जिसका मन आया उसे खिलाया। किसी ने कुछ उसे दे दिया तो मैंने कभी सदेह नहीं किया। ओह ! फिर भी मोह और ममत्व का दोष !

मैं उसका शृङ्गार करते सदा ही डरती थी, इसी से कभी ठाटबाट न बनाया। इसे मोह कह सकते हैं, लेकिन

गया ! मेरी आशा के रम्य प्रसून ! तुषार की सृष्टि क्या इसीलिये हुई थी कि तुम न रहते ! तुम्हारा यहाँ रहना किसे कष्टकर था। कष्टकर होगा, उन्हीं स्वार्थी देवों को—पर नहीं मैं भूलती हूँ, जिन्होंने लेकर फेंक दिया वह उन्हीं नर-पिशाचों को कुप्यारा रहा होगा। मैं स्वयं ही कहती हूँ उसे सब प्यार करते थे अन्यथा वह वेग-वाहिनी सरिता गोद फैलाकर क्यों उसे ले लेती। मेरी तो यही धारणा है, कि वह न तब मरा था न अब मरा होगा। यमराज भी ऐसे कुसुम-कोमल बालक को अकाल-मृत्यु जैसी अस्वभाविक रीति से नहीं हरते।

मैं तो कभी न देती चाहे लोग सिर पीट कर मर जाते। छल से ले लिया। डाक्टर को दिखाने के बहाने ले लिया, और खड़े ही खड़े फेंक दिया—हाँ खड़े ही खड़े नदी की उस प्रबल धारा में। मुनुआँ पानी में गिरते ही डूब गया। मेरी आँखों का तारा ऐसा डूबा कि फिर कभी उदय न हुआ। हाय ! मैं सिर पीटकर रह गई—मन मसोस डाला, पर उसकी स्मृति हर समय ताजी रहती है। रहेगी क्यों न, मेरे सोते हुए बच्चे को धड़ाम से पटक दिया। इतनी क्रूरता ! इतनी निर्ममता !!—इसी तरह का प्रलाप करती हुई एक पगली गंगा तटवर्ती नगरों और गाँवों में बराबर इधर से उधर फिरा करती थी।

(२)

भीड़ से जी ऊब गया है। हटाओ, ब्रजेश ! इन्हें हटाओ। ये ढेर के ढेर आदमी—ये असंख्य मानव-मुण्ड संसार की शांति में व्याघात उत्पन्न करते हैं। ये महत्वाकांक्षा के पुतले हैं। इनके संघर्ष से प्रभात की सुषमा का, निशीथ की नीरवता का और संध्या की सरसता का एकदम लोप होजाता है। विकास की इस सरसता में मेरा मन उसी समय फिर गया था, जब ग्राम

स्त्री—नहीं महाशय! मैं यह नहीं कहती कि पागल को गल न कहा जाय, लेकिन जो नहीं है उसे ठेलठाल कर पागल ताना बुरा है। मैं सर्वस्व छोड़े हुए तीन वर्ष से पागलपन के रण मारी-मारी नहीं फिर रही हूँ। मुझे एक दुख है और रा दारुण दुख, जिससे बड़ा दुख कम से कम मातृ-जाति के ये दूसरा नहीं हो सकता। मैं तो अपनी व्यथा से व्याकुल। तन-मन की, घर-बार की, सुध कौन करे!—बस यही मेरा गलपन हो सकता है।

सरदार—तो क्या मैं तुम्हारे दुख का कारण जान कता हूँ?

स्त्री—क्यों नहीं, आपसे अवश्य कहूँगी। यद्यपि मैं जानती कि उस दुखदायी बात का स्मरण मुझे नये सिरे से रुलायेगा। ।, तो महाशय! मैं माता थी और मेरे एक लाडला दुलारा ौर आँखों का तारा प्यारा-पुत्र भी था। उसकी मैं क्या कहूँ? ह कलाधर की कला से भी सुहावना, कुसुम से भी कोमल ौर सौन्दर्य से भी सुन्दर था। उसे संसार प्यार करता था। बात दाऊगी नहीं—एक दिन उसके जीवन भर मे पहली बार, मैंने से आभूषित किया। हाय! पर मैं क्या जानती थी कि लाल ा मेरे हाथों वह अंतिम शृङ्गार होगा। वह दिन, वह समय रा वह उल्लास से खिल उठना—फिर कभी लौटकर न आया। गप पूछेंगे, क्यों? अच्छा कहूँगी—हृदय पर पत्थर रखकर हूँगी। किसी कारण से उसे गहरी नींद आगई, मेरे जगाने पर ह जागा नहीं। कमसमझ लोगों ने कहा, उसे काले ने डस लया है। मैं सहम गई, फिर मुझे रुलाई आगई और रोरोकर ने पर भर दिया—पर वह न जागा, अन्त तक सोता ही रहा। ाखिर कुछ पासपड़ोस के क्रूरों ने उसे मेरे सामने नदी में

जाती हुई उस विचित्र स्त्री की ओर देखते रह गये। फिर शीघ्र ही उठकर लोगों को स्त्री का पीछा करने से रोक दिया।

कुरसी पर बैठकर सरदार साहब ने कहा—ब्रजेन्द्र !

ब्रजेन्द्र—जी !

सरदार—स्त्री तो किसी सम्भ्रान्त घराने की जान पड़ती थी न ? पुत्र शोक से उसका मस्तिष्क बिगड़ गया मालूम पड़ता है। बच्चा उसका जीता तो भला अब क्या होगा, पर न जाने मेरा मन क्यों उसे सहायता देने के लिये आतुर सा हो रहा है। ब्रजेन्द्र तुम जरा मेरा कोट तो ला दो।

ब्रजेन्द्र—यह पगली है साहब आप कहाँ जायँगे ?

सरदार—मैं जरूर जाऊँगा। तुम देर मत करो।

ब्रजेन्द्र—कहिये तो मैं चला जाऊँ या अगर आप ही जाना चाहें तो घोड़े पर चढ़कर जाइये। मैं अभी जीन कसवाकर उसे लिये आता हूँ।

सरदार ने ब्रजेन्द्र को रोककर कहा--नहीं घोड़ा मत लाना। मैं यों ही जाऊँगा।

हारकर ब्रजेन्द्र कोट उठा लाया। उसे कंधों पर डालकर बड़ी फुर्ती से सरदार साहब बँगले से बाहर निकल गये। ब्रजेन्द्र ने दौड़कर बतलाया। वह इसी तरफ गई है साहब। सरदार लम्बे लम्बे कदम रखकर उसी तरफ चले गये।

उन्होंने दोपहर तक बराबर तलाश किया, पर उस स्त्री का कहीं पता न चला।

(इति)